सहजानंद शास्त्रमाला

पात्रकेशरि स्तोत्र प्रवचन

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

सहजानन्द शास्त्रमाला

पात्रकेशरिस्तोत्र प्रवचन

प्रथम भाग

रचयिता—
अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री
पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी
"सहजानंद" महाराज

प्रकाशक—
खेमचन्द जैन सर्राफ
मन्त्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उ० प्र०)

प्रथम संस्करण
१०००
अगस्त, १९७७

लागत २)२० रु०

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परमात्म-आरती

ॐ जय जय अविकारी ।

जय जय अविकारी, ॐ जय जय अविकारी ।
हितकारी भयहारी, शाश्वत स्वविहारी ॥टेक॥ ॐ

काम क्रोध मद लोभ न माया, समरस सुखधारी ।
ध्यान तुम्हारा पावन, सकल क्लेशहारी ॥१॥ ॐ

हे स्वभावमय जिन तुमि चीना, भव सन्तति टारी ।
तुव भूलत भव भटकत, सहत विपति भारी ॥२॥ ॐ

परसम्बंध बंध दुख कारण, करत अहित भारी ।
परमब्रह्मका दर्शन, चहुं गति दुखहारी ॥३॥ ॐ

ज्ञानमूर्ति हे सत्य सनातन, मुनिमन संचारी ।
निर्विकल्प शिवनायक, शुचिगुण भण्डारी ॥४॥ ॐ

बसो बसो हे सहज ज्ञानघन, सहज शांतिचारी ।
टलें टलें सब पातक, परबल बलधारी ॥५॥ ॐ

नोट—यह आरती निम्नांकित अवसरोंपर पढ़ी जाती है—

१– मन्दिर आदिमें आरती करनेके समय ।

२– पूजा, विधान, जाप, पाठ, उद्घाटन आदि मंगल कार्योंमें ।

३– किसी भी समय भक्ति-उमंगमें टेकका व किसी छंदका पाठ ।

४– सभाओंमें बोलकर या बुलवाकर मंगलाचरण करना ।

५– यात्रा वंदनामें प्रभुस्मरणसहित पाठ करते जाना ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वाध्याय व प्रवचनसे पहले पठितव्य आत्म-रमण व मंगल-तंत्र

※ आत्म रमण ※

मैं दर्शनज्ञानस्वरूपी हूं, मैं सहजानन्दस्वरूपी हूं ।। टेक ।।

हूं ज्ञानमात्र परभावशून्य, हूं सहज ज्ञानघन स्वयं पूर्ण ।
हूं सत्य सहज आनंदधाम, मैं सहजानंद०, मैं दर्शन० ।।१।।

हूं खुदका ही कर्ता भोक्ता, परमें मेरा कुछ काम नहीं ।
परका न प्रवेश न कार्य यहां, मैं सहजा०, मैं दर्शन० ।।२।।

आऊं उतरूं रम लूं निजमें, निजकी निजमें दुविधा ही क्या ।
निज अनुभव रससे सहज तृप्त, मैं सहजा० मैं दर्शन० ।।३।।

•••०○०•••

※ मंगल-तन्त्र ※

ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्धं चिदस्मि ।
मैं ज्ञानमात्र हूं, मेरे स्वरूपमें अन्यका प्रवेश नहीं अतः निर्भार हूं ।
मैं ज्ञानघन हूं, मेरे स्वरूपमें अपूर्णता नहीं, अतः कृतार्थ हूं ।
मैं सहज आनंदमय हूं, मेरे स्वरूपमें कष्ट नहीं, अतः स्वयं तृप्त हूं ।
ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्धं चिदस्मि ।

•••०○०•••

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री 'सहजानन्द' महाराज
द्वारा रचित

आत्मभक्ति

मेरे शाश्वत शरण, सत्य तारणतरण ब्रह्म प्यारे ।
तेरी भक्तीमें क्षण जायें सारे ।।टेक।।

ज्ञानसे ज्ञानमें ज्ञान ही हो, कल्पनाओंका इकदम विलय हो ।
भ्रांतिका नाश हो, शांतिका वास हो, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ।।१।।

सर्व गतियोंमें रह गतिसे न्यारे, सर्व भावोंमें रह उनसे न्यारे ।
सर्वगत आत्मगत, रत न नाहीं विरत, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ।।२।।

सिद्धि जिनने भि अब तक है पाई, तेरा आश्रय ही उसमें सहाई ।
मेरे संकटहरण, ज्ञान दर्शन चरण, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ।।३।।

देह कर्मादि सब जगसे न्यारे, गुण व पर्ययके भेदोंसे पारे ।
नित्य अंतः अचल, गुप्त ज्ञायक अमल, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ।।४।।

आपका आप ही प्रेय तू है, सर्व श्रेयोंमें नित श्रेय तू है ।
सहजानन्दी प्रभो, अन्तर्यामी विभो, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ।।५।।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पात्रकेशरिस्तोत्र प्रवचन

प्रथम भाग

रचयिता—अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री
पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज

जिनेन्द्र ! गुणसंस्तुतिस्तव मनागपि प्रस्तुता,
भवत्यखिलकर्मणां प्रहतये परं कारणम् ।
इति व्यवसिता मतिर्ममततोऽहमत्यादरात,
स्फुटार्थनय पेशलां सुगतः संविधास्ये स्तुतिम् ॥ १ ॥

(१) पात्रकेशरी स्तोत्रके रचयिताका ज्ञानप्रकाश—

यह विद्यानन्दि स्वामी महाराज द्वारा रचा गया पात्रकेशरि स्तोत्र है। विद्यानन्दि महाराज ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न हुए थे और अबसे करीब पाँच-सात सौ वर्ष पहिलेकी बात है। यह बहुत बड़े विद्वान् थे, पर जैनधर्मसे द्वेष रखते थे। राजाके पुरोहित थे। राजा इनको पूज्य मानता था और उनके चार-पाँच सौ शिष्य भी थे। वेद वेदान्तके बहुत बड़े विद्वान् थे। तो जब यह राजदरबारसे घर आते थे तो रास्ते में पार्श्वनाथ भगवानका मन्दिर पड़ता था। तो जब रास्तेमें

Version 1

मन्दिर आये तो मुंह फेरकर मन्दिरकी तरफ पीठ करके टेढ़े-मेढ़े चला करते थे, इतना जैनशासनसे उनको द्वेष था। तो जब ऐसा करते बहुत दिन हो गए, तो एक दिन विचारा कि हम जिस मन्दिरको मूर्तिको तरफ पीठ करके चलते हैं उस मन्दिरमें है क्या, देखना तो चाहिये। सो मन्दिरमें गए तो वहाँ एक मुनि देवागम स्तोत्र पढ़ रहे थे। देवागम स्तोत्र स्वामी समन्तभद्रका बनाया हुआ है और उस स्तोत्रमें सब मतोंका वर्णन करते हुए यह बताया है कि हे जिनेन्द्र ! आपके शासनमें जो तत्त्व दिखाया है उसमें बाधा नहीं है। बाकी सब एकान्त मतोंमें बाधा है। तो ऐसे देवागम स्तोत्रको पढ़ रहे थे। तो विद्यानन्दि स्वामी वहाँ पहुंचे। जब वे गृहस्थ थे उस समयकी यह बात है। वे उस स्तोत्रको सुनने लगे, तो संस्कृतके ऊँचे विद्वान् तो थे ही, सब स्तोत्रोंका अर्थ समझमें आने लगा। जब वे पढ़ चुके तो उनसे पूछा—महाराज ! इस स्तोत्रका अर्थ भी बताइये। तो मुनि बोले कि भाई हम बहुत ऊँचे विद्वान नहीं हैं, हम अर्थ नहीं बता सकते हैं। हम तो अपनी साधनामें लगे हैं। तो यह बात सुनकर विद्यानन्दिके हृदयमें और अधिक असर पड़ा कि धन्य है, अपने दिलकी बात कहनेमें ये संकोच नहीं करते। तो कहा— महाराज ! आप एक बार इसे और पढ़ दीजिए। तो उन्होंने दुबारा पढ़ा और विद्यानन्दिने इस स्तोत्रको बड़े ध्यानसे सुना, तो सुनते

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सुनते ही उनकी दृष्टि बदल गई और सोचा कि शासन तो जैनशासन ही सर्वोच्च है। इसमें स्याद्वाद, अनेकांत तथा स्वरूप भेदज्ञान सभी बातें अद्‌भुत हैं। बस वहीं उनको जैनधर्म पर श्रद्धा हो गयी। विद्वान तो ऊँचे थे ही, और साथ ही आत्महितकी इच्छा भी हुई कि कुछ आत्मकल्याण करना चाहिए। बहुत दिन हो गए सभामें, राजदरबारमें और लोकव्यवहारमें। तो इसी चिन्तामें वे सो गए, पर उस देवागम स्तोत्रको सुनकर और सब तो संशय इनके दूर हो गए, केवल एक बातमें यह अटक गए कि अनुमानका लक्षण क्या है और किस हेतुसे अनुमानकी सिद्धि होती है ? उस हेतु और अनुमान के स्वरूपका संशय रह गया। तो रात्रिमें सोते समयमें चक्रेश्वरी देवीने स्वप्नमें बताया कि देखो—तुम जो शंका रख रहे हो उसका समाधान तुम्हें उसी मंदिरमें पार्श्वनाथ भगवान के पीछे लिखा हुआ मिलेगा। जब सवेरा हुआ तो सोचा कि अरे हमें ऐसा स्वप्न आज रातको आया है तो इसमें बात क्या है ? जब नहा-धोकर वह मन्दिरमें गए तो दूरसे ही देखा कि उन पार्श्वनाथ भगवानके पीठ पीछे वह श्लोक लिखा हुआ था। वह श्लोक इस प्रकार था—

"अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्। नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम् ॥ अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र किं तत्र पञ्चभिः। नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र किं तत्र पञ्चभिः ॥"

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यह बात जरा कठिनसी लगेगी, सो इस विषयमें अधिक नहीं बढ़ रहे हैं, उनका अर्थ है कि जिस हेतुमें अन्यथानुत्पत्ति हो, जैसे आगके बिना धुवां नहीं हो सकता सो धुवां दिखा तो जान लेना चाहिए कि यहाँ आग जरूर है, इस तरह हेतुके लक्षण होते हैं, वहाँ फिर ५ रूप हों या ३ रूप हों उससे कुछ प्रयोजन नहीं। इस श्लोकको देखते ही उनकी सब शंका दूर हो गयी।

(२) विद्यानन्दिस्वामीका साधुत्व—

विद्यानन्दिजी प्रतिदिन दोपहरको राजदरबारमें जाया करते थे। तो जब वह राजदरबारमें पहुंचे और वहाँ भरी सभामें व्याख्यान दिया तो उनका व्याख्यान अद्भुत था, क्योंकि जैनशासनमें यह रंग गए थे, जैनशासनमें इन्हें श्रद्धा हो गयी थी। तो उनका सारा व्याख्यान स्याद्वादशैलीसे हुआ। सभी लोग उनके व्याख्यानको सुनकर दंग रह गए। सभी लोग सोचने लगे कि आज इन्हें क्या हो गया है ? किसीने एक प्रश्न किया कि महाराज आज आप क्या कह रहे हैं ? आज तो आप स्याद्वादकी महिमा बता रहे हैं। तो विद्यानंदि स्वामी बोले कि धर्म है तो एक जैनधर्म ही सच्चा शासन है, और इस विषयमें जिसको विवाद करना हो वह विवाद भी कर ले, पर धर्म, शासन यदि है तो यह जैनशासन है, जिसमें अहिंसा, स्याद्वाद आदि सब अपूर्व तत्त्वोंका प्रवेश है। बस उस दिनके

बाद फिर वे राजदरबारमें नहीं गए और घर आकर सीधे ही किसी जंगलकी ओर चल दिये और किसी मुनिसे दीक्षा ले ली। तब उनके साथ सैंकड़ों शिष्य भी साधु हो गए और विद्यानन्दि स्वामीने यह स्तोत्र बनाया है, जिसे आज पढ़ रहे हैं।

(३) जिनेन्द्रदेवकी प्रस्तुत स्तुतिसे कर्मक्षय—

इस स्तोत्रके प्रथम श्लोकमें आचार्य कह रहे हैं कि हे जिनेन्द्रदेव ! तुम्हारी थोड़ी भी स्तुति की जाय तो वह भी समस्त कर्मोंके क्षयके लिए परम कारण होती है। भगवान जिनेन्द्रदेवका क्या स्वरूप है ? ऐसा आत्मा जिसमें रागद्वेष नहीं रहे और रागद्वेष न रहनेके कारण ऐसा विशाल ज्ञान बन गया कि जिस ज्ञानमें तीन लोक, तीन कालकी सब बातें स्पष्ट झलकने लगें, ऐसा जो कोई उत्कृष्ट आत्मा है उस ही को जिनेन्द्र कहते हैं। अब यहाँ जरा अपनी ओर भी दृष्टि करें। आत्मा सब एक समान हैं। जितने भी जीव हैं उन सब जीवों में एक समान गुण हैं। प्रभुमें और हम आपमें सबमें वही स्वरूप बसा हुआ है, पर जिसने अपने स्वरूपका ज्ञान कर लिया, बाहरी प्रपंचोंसे मुख मोड़ लिया, अपने इस ज्ञानानन्द-स्वरूपमें ही दृष्टि स्थिर कर ली, वह तो संसारसे पार हो गया और जो अपने ज्ञानस्वरूपसे विमुख हैं, बाहरी पदार्थोंमें ही रागद्वेषकी प्रवृत्ति लगाये हुए हैं उनका तो बस यों ही टूटी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

गाडीकी तरह जीवन चल रहा है, और अन्तमें मरण हो जाने पर न जाने किस-किस योनिमें भ्रमण करना पड़ता है ? तो भगवानका स्वरूप और अपना स्वरूप एक समान है। तब उस भगवानकी भक्ति करनी चाहिए, प्रभुके स्तवनसे, ध्यानसे अपने आत्माकी खबर आयगी और जैसा मैं वास्तवमें ज्ञानस्वरूप हूं उस तरहकी मेरी वृत्ति बनेगी तो मेरा भला होगा।

(४) सांसारिक कार्योंमें सर्वत्र अकल्याण—

लोकमें कोई भी काम कर लो—किसी भी काममें कल्याण नहीं है। काम क्या होगा ? ६ तरहके काम हैं दुनियामें। ५ इन्द्रियके विषयोंका भोगना और एक मनका विषय-यश, प्रतिष्ठाकी चाह करना। जैसे स्पर्शनइन्द्रियका काम ठंडा, गर्म आदिका स्पर्श करना, रसनाइन्द्रियका काम खट्टा, मीठा आदिक रसोंका स्वादना, घ्राणइन्द्रियका काम सुगंध, दुर्गंध आदिकका सूंघना, चक्षुइन्द्रियका काम सुन्दर रूप देखना, कर्णइन्द्रियका काम रागभरी बातें सुनना और मनके द्वारा दुनियामें अपनी प्रतिष्ठा चाहना, ये ६ ही काम तो दुनियामें हैं, लेकिन ये सब काम असार हैं। इन्द्रियाँ स्वयं विनाशीक चीज हैं और इन्द्रियके विषय ये भी विनाशीक चीज हैं। और भी सोचिये कितने दिनका जीवन, कितने दिनका विषय, आखिर सब छूटना है। उनमें सार नहीं है, और जितने काल विषयोंमें लग रहे हैं, उतने समय भी इस जीवको शांति नहीं

http://www.jainkosh.org

है। तो ये सारे विषय असार हैं। सार है तो एक प्रभुकी भक्ति और अपने आत्माके स्वरूपका ध्यान, इन दो के सिवाय कुछ भी सार नहीं है। गुरु महाराज हैं वे भी प्रभुतुल्य हैं। तो पंच परमेष्ठीकी भक्ति और अपने आत्मस्वरूपका ध्यान—इन दो बातोंके सिवाय कुछ भी लोकमें सारभूत बात नहीं है। सो जब भगवान जिनेन्द्रके गुणोंपर ध्यान पहुंचता है तो आत्मस्वरूपपर दृष्टि जगती है और उस दृष्टिसे समस्त कर्मोंका नाश हो सकता है। जिनेन्द्रदेवकी थोड़ी भी देर तक गुणस्तुति की जाय तो वह भी समस्त कर्मोंके नाशके लिए कारण बनती है। ऐसा बुद्धिमें निश्चय हुआ है। इस कारण हे जिनेन्द्रदेव ! मैं आपकी स्तुतिको करूँगा, किन्तु जब मेरा यह निश्चय है कि आपकी स्तुति करनेसे पार पाया जा सकता है, संसारकी विपत्तियाँ दूर की जा सकती हैं तो बस मेरेको अब काम क्या रहा ? आपकी स्तुति करना, सो जिसमें बड़ा अर्थ भरा हो, नयविभाग जिसके लगा हो, ऐसी उस स्तुतिको करूँगा। देखिये—आचार्य यह कह रहे हैं कि मेरी बुद्धिमें यह निर्णय हो चुका, इसलिए मैं प्रभुभक्ति करूँगा।

(५) प्रभुभक्तिमें मन न लगनेका कारण बाह्यममत्व—

जो लोग शंका करते हैं कि प्रभुकी भक्तिमें मन ही नहीं लगता, पूजा पाठमें, स्तवनमें, धर्मध्यानमें मन ही नहीं लगता, तो ठीक बात है। वे यह तो विचार करें कि मन क्यों नहीं लगता ? मन यों नहीं लगता कि वहां बुद्धिमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निश्चय कुछ और बैठा हुआ है। लोकमें धनी बनें, प्रतिष्ठित बनें, खूब खाने-पीनेका साधन बनायें, वैभव जुड़ावें, यहाँ यह सार जंच रहा है, इसलिए प्रभुभक्तिमें मन कैसे लगेगा? प्रभु-भक्तिमें मन लगेगा, इसके लिए यह जरूरी है कि बुद्धिमें यह निर्णय आ जाय कि बस सारभूत बात है तो प्रभुकी स्तुति। अपना आत्मा भी प्रभु ही कहलाता है। स्वभावको जब देखा तो जो भगवान जिनेन्द्रका स्वरूप है सो ही अपना स्वरूप है। तो अपने स्वरूपकी स्तुति, प्रभुके स्वरूपकी स्तुति वही मात्र एक सारभूत बात है। ऐसा बुद्धिमें निर्णय हो गया तब आचार्य प्रभुकी स्तुति करनेको उद्यमी हो रहे हैं।

(६) प्रभुकी स्तुति करनेसे ही कल्याण—

तो अब अपने कल्याणके लिए यह जरूरी है कि चित्तमें यह बात बैठ जाय कि प्रभुकी स्तुति करनेसे ही हमारे पापकर्म दूर होंगे और हमें कल्याणका मौका मिलेगा। अन्य कामोंसे तो पाप ही बढ़ेगा, उलझनें ही बढ़ेंगी, सार किसीमें न मिलेगा। एक प्रभुकी गुणस्मृति ही सारभूत चीज है। आप इसकी परीक्षा करके देख लो—जिस घरमें बच्चे हों, बच्चोंके बच्चे हों तो कोई यह सोचता है कि अब मेरेको सब कुछ मिल गया, सब कुछ कर लिया, सो मेरेको अन्य कुछ काम नहीं है। मोह ममता हमारी सब पार हो गयी है। अब मोह न रहेगा, लेकिन जैसे बड़ी अवस्था होती है और घरमें बच्चे

के बच्चे, बच्चोंके बच्चे होते रहते हैं वैसे ही उनकी ममता भी बढ़ती रहती है। मकडी स्वयं अपने मुखसे तंतु निकालती है, जाल पूरती है और उसी जालमें बनी रहती है। इसी तरह मोही प्राणी स्वयं अपने जीवमें से मोहविभाव निकालते हैं, पूरते हैं और मोह जालमें बने रहते हैं, तो जिनका यह स्थिति है उनको प्रभु कैसे रुच जायगा? तो प्रभु रुचें, प्रभुकी स्तुति करना रुचे, इसके लिए यह आवश्यक है कि पहिले बुद्धिमें यह बात बैठ जाना चाहिए कि भगवानकी स्तुति करनेसे ही हमारा पूरा होगा अन्यथा हम संसारमें भटकते ही रहेंगे।

(७) प्रभुभक्तिमें मन लगानेके लिये तात्त्विक ज्ञानकी उपयोगिता—

देखो भैया! गृहस्थ हुए, श्रावककुल पाया, अच्छे समागम पाये तो इन सबका सदुपयोग क्या है? इसका सदुपयोग यही है कि ऐसा विवेक बनायें कि मोहसे छूट करके सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप मोक्षमार्गमें लग जायें। गृहस्थ होते हुए कुछ कर्तव्य होता है जिससे मोक्षमार्गमें प्रगति हो सकती है। वह कर्तव्य क्या है? तो पहिले तो यह धारणा बना लेनी चाहिए कि हमको जितने भी समागम मिले हैं—धन वैभव परिजन, और और जो-जो कुछ भी चीजें मिली हुई हैं वे सब चीजें असार हैं, और मिट जाने वाली है। देखिये—यदि ऐसा ज्ञान न रखा इस समय तो जो चीजें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

मिली हैं, उनका जब वियोग होगा तो दुःखी होना पड़ेगा। जिन चीजोंका संयोग हुआ है उनका वियोग तो जरूर होगा। जिन चीजोंका वियोग हुआ है उनका संयोग होवे अथवा न हो, जो चीजें बिछुड़ गयीं वे दुबारा मिलें अथवा न मिलें, वहाँ दोनों ही बातें हो सकती है, मगर जो चीजें मिली हुई हैं वे बिछुड़ेंगी जरूर। अब जब सब चीजें बिछुड़ेंगी तब हम दुःखी न हो सकें, ऐसा उपाय अभीसे बनायें ता बनेगा। और अभी उस समागममें बड़ा मोह मत्त रहें, उसीमें लिप्त रहें तो बिछुड़ते समयमें उसे बहुत दुःखी होना पड़ेगा। तो पहिलेसे यह निश्चय रखिये कि जिस-जिस चीजका संयोग हुआ है उस सबका वियोग अवश्य होगा, तो जिसका वियाग नियमसे होगा। और मेरे साथ रह न सकेगा तब उसके मोहमें क्या सार रखा है? तो मोहमें सार नहीं है। जो भी समागम मिले हैं वे सब भिन्न हैं, असार हैं, विनाशीक हैं, मेरा इनसे कोई ताल्लुक नहीं हैं। पहिले तो यह ज्ञान बने।

(८) प्रभुभक्तिमें मन लगानेके लिए सही ज्ञानका होना आवश्यक—

अब देखिये सही बात, और सही बातको ज्ञानमें लेवें यह कहा जा रहा है। बतलावो इसमें कोई बात असत्य है क्या कि जो चीज मिली है उसका नियमसे वियोग होगा? यह बात झूठ तो नहीं है। अरे बड़े दादा बाबा नहीं रहे,

http://www.jainkosh.org

छोटे बड़े बहुत बिछुड़ गए, तो अब जो कुछ मिले हुए हैं ये भी बिछुड़ जायेंगे, जब अपना देह भी साथ न दे सकेगा, देहको छोड़कर ही जाना पड़ेगा तो औरकी तो बात ही क्या है? यदि सही ढंगसे धर्मलाभ लाना है और आत्मकल्याण करना है, संसारके संकटोंसे छूटना है तो जो सच्ची बात है उसका ज्ञान करना सर्वप्रथम आवश्यक है। तो पहिले तो यह निर्णय रखिये कि जो समागम मिले हैं वे सब भिन्न हैं, असार हैं, अशरण हैं, विनाशीक हैं, उनमें मोह करनेकी गुंजाइश नहीं है। फिर दूसरा निर्णय यह बनावें कि जब ये सारे समागम असार हैं, मेरे कामके नहीं हैं, नियमसे बिछुड़ेंगे। तब सारभूत काम क्या है और कौनसा पदार्थ है जो मुझसे कभी बिछुड़ेगा नहीं? तो ऐसा है अपना आत्मा। अपने आत्माके सच्चे स्वरूपका ज्ञान कर लीजिए। मैं सबसे निराला रूपरंगरहित ज्ञानमात्र हूं, केवल एक ज्ञानज्योतिप्रकाश, यही मेरा स्वरूप है और इस ज्ञानज्योतिप्रकाशमें स्वयं आनन्द भरा हुआ है, ऐसा ज्ञानानन्दमय यह मैं आत्मा हूं। मैं प्रभुवत् ज्ञानानन्दसे परिपूर्ण हूं, लेकिन संगमें जो रागद्वेष मोह ममता विषयकषाय लग रहे हैं, बस इसके कारण इसने अपनी निधिको बरबाद कर दिया।

(९) प्रभुभक्तिमें मन लगनेके लिये संगकी असारता व प्रभुभक्तिकी सारता, इन दो निर्णयोंकी अनिवार्यता—

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यदि दो बातें निर्णयमें हों तो प्रभुभक्तिमें मन लगेगा। पहिली बात यह है कि सारा समागम असार विनाशीक है। दूसरी बात यह कि मेरे आत्माका स्वरूप, मैं यह ज्ञानानन्दमय पदार्थ सदा रहने वाला हूं और यही मेरे लिए सार है। इसका आलम्बन करूँ, इसको उपयोगमें रखूं तो यही मेरे लिए सारभूत है। शेष मेरे लिए कुछ भी सार नहीं है। ये दो निर्णय हों तो प्रभुभक्तिके लिए मन चलेगा, धर्मध्यानके लिए मन चलेगा। अब बतलाओ जो सारहीन बातें हैं उनमें ही उपयोग फंसाये रहे तो उससे फायदा क्या उठाया ? लगता है ऐसा कि घर है, बच्चे हैं, लोग हैं, ममता करनी पड़ती है, करना चाहिए, हमारा ही तो घर है, हमारे ही तो लोग हैं, कैसे दूसरे हो जायेंगे ? ऐसा मोहमें लगता है, मगर वास्तविकता यह है कि यहाँ हमारा कुछ भी नहीं है। केवल जो अपना स्वरूप है, बस वही हमारा धन है और भीतर जो विषयकषाय बन रहे हैं ये ही हमारे दुश्मन हैं। और आत्माके स्वरूपपर दृष्टि जाय तो यही हमारा मित्र है और बाहरमें न कोई मेरा शत्रु है और न मित्र। तो जब बुद्धिमें ये दो बातें विशेष बैठ जायें तब ही यह निश्चय बनेगा कि हे जिनेन्द्रदेव ! तुम्हारी थोड़ी भी गुणोंकी स्तुति की जाय तो उससे भव-भवके कर्म कट जाया करते हैं।

(१०) जिनेन्द्रगुणस्तवनसे कर्मक्षयकी बात बननेके निश्चय पर गुणस्तवनमें प्रयत्न—

देखिये—कर्म आते हैं तो क्रोध, मान, माया, लोभ कषायके द्वारसे आते हैं। कषायें कीं, कर्मबन्ध हुआ तो कर्म रुके या जो पहिले बँधे हुए कर्म हैं उनका विनाश हो तो वह भी इस उपाय द्वारा हो सकेगा कि कषाय न करें। कर्म अपने आप दूर हो जायेंगे। अब कषायें न करें, इसके लिए उपाय सरल यही है। पहिले तो जिसमें कषायें नहीं रहीं, ऐसे जो प्रभु हैं उनके गुणोंका ध्यान रखें, यह हमारा आपका आत्मा भी कषायरहित है, इसमें कषायका स्वभाव नहीं पड़ा हुआ है। स्वभाव तो ज्ञान और आनन्दका है जो कभी भी न टलता हो। तो भगवानका आत्मा भी ज्ञानानन्दस्वभाव वाला था। सो जब कषायें दूर हो गयीं तो वही स्वभाव पूर्ण रूपसे प्रकट हो गया। जब भगवानके वीतराग सर्वज्ञ स्वरूपको दृष्टि करते हैं तो कितनी ही मोह ममता दूर हो जाती है। कितनी ही विकल्प विडम्बनायें समाप्त हो जाती हैं। तो अपने आप अपने आत्माके गुणोंपर दृष्टि पहुंचती है, यही सन्तोष होता है, समता उत्पन्न होती है, ज्ञानभाव बनता है। तो आत्मा जब ऐसे स्वच्छ ज्ञानप्रकाशमें आ जाय तो कर्म अपने आप खिर जायेंगे। तो आचार्य कहते हैं कि हे जिनेन्द्रदेव ! तुम्हारी की हुई थोड़ी भी स्तुति सर्व कर्मोंके विनाशके लिए कारण है, इसलिए हम बड़े ही आदर विनयसे आपके गुणोंकी ओर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

झुकते हुए बड़े ही नम्र होकर हे देव, हम आपकी स्तुति करेंगे।

मतिःश्रुतमथावधिश्च सहजं प्रमाणं हिते,
ततः स्वयमबोधि मोक्षपदवीं स्वयंभूर्भवान् ।
नचैतदिह दिव्यचक्षुरधुनेक्ष्यतेऽस्मादृशां,
यथा सुकृतकर्मणां सकलराज्यलक्ष्म्यादयः ॥ २ ॥

(११) निर्विकार ज्ञानमूर्ति भगवानका स्मरण—

लोकमें सबसे महान कोई है तो वह प्रभु है, और ये प्रभु दो अवस्थाओंमें होते हैं। एक तो शरीरसहित अवस्थामें और एक शरीररहित अवस्थामें। जिस आत्मामें रागद्वेष नहीं रहा और ज्ञान इतना विशाल हो गया कि तीन लोक और तीन कालका सब कुछ जान जायें। ऐसा महान ज्ञानी और वीतराग प्रभुको परमात्मा कहते हैं, सो परमात्मा बनता कौन है ? साधु महाराज। साधुपरमेष्ठीके जब बहुत ऊँची तपस्या होती है, ज्ञानस्वरूप आत्मामें उनका ज्ञान मग्न हो जाता है तो चार घातिया कर्मोंका विनाश होता है, उस समय वे अरहंत कहलाते हैं और कुछ समय बाद शेष कर्म भी नष्ट हो जाते हैं तब वे शरीररहित हो जाते हैं, उन्हें कहते हैं सिद्ध भगवान। शरीरसहित भगवानको अरहंत भगवान कहते हैं और शरीररहित भगवानको सिद्धभगवान कहते हैं। लोग जाप देते हैं तो अरहंत सिद्धकी भी जाप देते हैं। तो वे अरहंत

http://www.jainkosh.org

सिद्ध क्या होते हैं ? उनका स्वरूप ज्ञानमें हो और फिर उनके नामका जाप देवे तो उसका असर होता है। अरहंत कहलाते हैं, ऐसे भगवान जिनके अभी शरीर लगा हुआ है, लेकिन आत्मा पूर्ण शुद्ध हो गया है। उनका ज्ञान एकदम निर्मल हो गया है। जो कुछ लोकमें है, था और होगा, वह सब ज्ञानमें आ गया है, रागद्वेष उनके जरा भी नहीं रहा, ऐसे शुद्ध स्वच्छ परमात्माको अरहंत भगवान कहते हैं और ये ही अरहंत भगवान जब शरीरसे भी अलग हो जाते हैं तब उनको सिद्ध भगवान कहते हैं।

(१२) प्रभुका मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञानरूप सहज प्रमाण—

यहाँ तीर्थंकर अरहंत भगवानकी स्तुतिमें कह रहे कि हे प्रभो, हे जिनेन्द्रदेव, हे तीर्थंकर भगवान ! तुम्हारा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान ये तीन प्रमाण तो सहज ही हैं। तीर्थंकर भगवान जब जन्म देते हैं, गर्भमें आये तबसे तीनों ज्ञान रहते हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान। मति और श्रुतज्ञान तो सभी जीवोंमें होते हैं, किन्तु ये सम्यग्दृष्टि होनेसे सम्यक्मतिज्ञान और सम्यक्श्रुतज्ञान वाले होते हैं। जिन ज्ञानोंके द्वारा उन भगवानने, तीर्थंकरने गर्भअवस्था में ही अपने आपके स्वरूपका भान कर लिया और वे निरन्तर अपने आत्माके ज्ञानस्वरूपके दर्शन करके तृप्त रहा करते हैं तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उन प्रभुको कहते हैं कि आपके ३ ज्ञान तो सहज हैं। मति-ज्ञान उसका नाम है जो कि ५ इन्द्रिय और मनके द्वारा पदार्थों की जानकारी की जाती है। जैसे हम आप भी इन्द्रियसे देखते हैं, सूँघते हैं, चखते हैं····तो ये सब मतिज्ञान कहलाते हैं। तो मतिज्ञानका विषय ये बाहरी पदार्थ भी हैं और मतिज्ञानका विषय अपने आत्माका अनुभव भी है। तो प्रभुके गर्भमें ही शुद्ध ज्ञान है तो वह आत्माका वहाँ भी अनुभव करता रहता है। आत्मानुभव इन्द्रियके आधीन नहीं है, इसलिए देखो— कितना स्वच्छ आत्मा तीर्थंकर माताके गर्भमें आता है कि वह बालक उस गर्भ अवस्थामें रहकर भी शुद्ध ज्ञान बनाये रहता है, नहीं तो छोटे बालकके ज्ञान सही नहीं बन पाता है। और वे गर्भमें ही जब कि शरीरके अंगोपाङ्ग भी न बने हों और कुछ अङ्ग भी बन गए हों तो उस छोटीसी अवस्थामें भी उनका ज्ञान स्वच्छ बना रहता है।

श्रुतज्ञान कहते हैं मतिज्ञानसे जानी हुई बातको और अधिक स्पष्ट जानना, सो श्रुतज्ञान भी तीर्थंकरके स्वच्छ पाया जाता है, और साथ ही अवधिज्ञान भी है। लोग बड़ा तपश्चरण करके अवधिज्ञान प्राप्त कर पाते हैं, लेकिन तीर्थंकर भगवानके लो जब वे गर्भमें थे तबसे ही अवधिज्ञान बना हुआ है। तो यों प्रभुके मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान—ये तीन सहज प्रमाण हैं, और जब अवधिज्ञान भी उनके मौजूद है तो मोक्ष

का मार्ग उन्होंने स्वयं समझ लिया। तीर्थंकर कहीं पाठशाला में मास्टरसे पढ़ने नहीं जाते। उनको सब विद्यायें सहज ही प्राप्त हो जाती हैं, और वह मोक्षमार्ग क्या है, किस तरह हमको प्रवृत्ति करनी चाहिए और कैसे मोक्ष पहुंचना है, इन सब बातोंका ज्ञान तीर्थङ्करके अपने आप ही होता है। तो चूंकि जन्मसे ही जिनके मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान है तो उन्होंने मोक्षमार्गका स्वयं ही निर्णय कर लिया कि मोक्षमार्ग क्या है?

(१३) प्रभुके जन्मकालसे ही मोक्षपदवीका परिचय—

देखो धर्मका परिज्ञान, मोक्षमार्गका परिचय बहुत ऊँचा परिज्ञान है। जिसके लिए बड़े-बड़े योगी पुरुष अपना सारा जीवन लगा देते हैं। शरीर क्या है, आत्मा क्या है? जो पदार्थ सामने दिख रहे हैं वे क्या हैं? इन सब बातोंका निर्णय गृहस्थावस्थामें ही तीर्थङ्करके ज्ञानमें सहज हो रहा है। वे स्पष्ट जान रहे हैं कि यह मैं आत्मा इन समस्त पदार्थोंसे अत्यन्त निराला हूं। परिजन, वैभव, मित्रजन ये सब परपदार्थ हैं, इनमें मेरा कुछ नहीं बनता, मुझसे इनका कुछ नहीं बनता। देहसे भी मैं निराला हूं। देह तो जड़ है, रूप, रस, गंध, स्पर्शका पिण्ड है। मैं आत्मा ज्ञानमय हूं, आनन्दस्वरूप हूं, अमूर्त हूं, ऐसा अपने आपके स्वरूपका भान उनके बना रहता है और योगीजन ऐसा भेदविज्ञान करके बाहरी पदार्थों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

से हटकर अपने ज्ञानमें लीन रहनेका उपाय करते हैं और यह बात उनके यथायोग्य अभीसे बन रही है। आत्मानुभव प्रायः जब चाहे होता रहता है तो ऐसा उनके विशिष्ट ज्ञान है। जब उन्होंने मोक्षमार्गको स्वयं जान लिया।

(१४) संसारकी दुःखपूर्णमता—

संसारमें सवत्र संकट ही संकट है। संसारमें चार गतियाँ हैं—नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव। तो नरकगति के देव बड़े दुष्ट स्वभाव वाले होते हैं। उनका शरीर खोटी विक्रियाका होता है। उन्हें मारनेके लिए कहीं हथियार नहीं जुटाने पड़ते हैं। उनके मनमें आया कि मैं इसे करौतसे काटूँ तो उनका हाथ ही करौतरूप बन जाता है। इच्छा हुई कि मैं तलवारसे चूर-चूर कर दूं तो हाथ मारा कि हाथ ही तलवार बन जाता है। तो जहाँ ऐसी खोटी विक्रिया है वहाँ कितना कठिन दुःख जीवोंको मिलता होगा? तो नरकमें कहीं चैन नहीं है।

(१५) तिर्यञ्चगतिमें दुःखपूर्णमता—

तिर्यंचगतिकी बात देखो—ये पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, कीड़ा, मकौड़ा, पंखी, डाँस, मच्छर, गधा, कौवा, सूकर, मुर्गा-मुर्गी आदिक ये सब तिर्यंच ही तो कहलाते हैं। इनको कितने क्लेश हैं? इनको जो चाहे मनुष्य मार डालते हैं, लोग जैसा चाहे मनमाना व्यवहार इन जीवोंके

http://www.jainkosh.org

साथ करते हैं। अभी कोई कुत्ता घरके अन्दर घुसने लगे तो लोग उसे कहाँ घुसने देते, जैसा चाहे दुदकारकर, मारकर भगा देते हैं अथवा जब कोई पशु किसी रोगसे ग्रस्त हो जाता है तो फिर कौन उसकी ओर ध्यान देता है? इन घोड़ा, खच्चर, गधा, भैंसा आदिको देखा होगा, इनपर लोग बहुत बड़ा बोझ लादते हैं। ये बेचारे पशु हाँफते हैं, शिथिल हो जाते हैं, पर जरा भी चलनेमें कमी हुई तो कोड़ोंकी बुरी मार सहते हैं। तो कितने दुःख हैं इन तिर्यंचोंको?

(१६) तिर्यंचोंकी अपेक्षा मनुष्य व देवगतिमें दुःखोंका अभाव—

हाँ इन मनुष्य और देवोंको कुछ मौजके साधन मिले हुए हैं। ये अपने मनकी बात दूसरेसे बता सकते हैं व दूसरेके मनकी बातको जान सकते हैं, यह बोलचाल वचन व्यवहार चल रहा है, लेकिन इन दोनों गतियोंमें भी सुख नहीं है। मनुष्योंकी बात तो यहीं देख लो—जिनके सम्पदा है वे भी दुःखी हैं और जिनके नहीं है वे भी दुःखी हैं। दुःख तो कल्पनासे बनाये जाते हैं। सम्पदा होनेपर भी लोग उससे अधिक सम्पदा वालोंकी ओर देखते हैं तो अपनेको ऐसा अनुभव करते हैं कि मेरे पास तो कुछ भी सम्पदा नहीं है। इतनी सी सम्पदासे क्या होगा? यों वे दुःखी रहते हैं। सम्पदा है तो उसके दुश्मन अनेक हैं। राजा, चोर, डाकू आदिक हैरान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करते हैं। तो उस धनकी रक्षा करनेकी चिन्ता बराबर बनी रहती है। तो जिनके सम्पदा है वे भी दुःखी हैं, और जिनके सम्पदा नहीं है वे अपनी निर्धनता देखकर तथा दूसरोंकी धनिकता देखकर मन ही मन कुढ़ते रहते हैं। तो संसारमें मनुष्य भी बड़े दुःखी हैं। कदाचित् कोई विद्वान् है तो वह अपनी यश-प्रतिष्ठाकी चाहवश दुःखी रहा करता है और कोई मूर्ख है तो वह यह सोच-सोचकर दुःखी रहता है कि मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं मिला, मेरी तो कुछ भी इज्जत नहीं होती। तो कौन मनुष्य सुखी है लोकमें ? देवोंकी बात देखो—यद्यपि देवोंको क्षुधा, तृषा आदिकका दुःख नहीं है, लेकिन मानसिक दुःख उनको लगा है। अपनेसे बड़ी ऋद्धि वाले देवोंको देखकर दुःखी रहा करते हैं। तो संसारकी चारों गतियोंमें कहीं भी साता नहीं है। केवल एक मोक्षमार्गमें ही साता मिलती है। इन तीर्थंकर भगवानको गृहस्थावस्थामें ही संसार व मोक्ष के स्वरूपका बहुत स्पष्ट बोध था।

(१७) संसारपदवी व मोक्षपदवीका संक्षेपमें परिचय—

मोक्ष और संसार क्या है ? आत्मामें ज्ञान है, सबके ज्ञान है, पर जो जीव अपने ज्ञानको बाहरी पदार्थोंमें जोड़कर रखता है कि यह मेरा धन है, यह मेरा घर है, पुत्र है, मित्र है····उनको देख करके फिर खुश होता है, उनके दुःखमें, वियोगमें दुःख मानता है, बस यही तो संसार है और इसके

फलमें नाना प्रकारके शरीरोंमें जन्म लेना पड़ता है। तो जिस शरीरमें जन्म लिया उसी शरीरमें ममता करता है यह जीव। यों जन्म मरण करता हुआ जीव सदा दुःखी रहा करता है। तो इन दुःखोंसे छूटनेको बात सोचनी चाहिए। मनुष्य हुए, जैनशासन मिला, मन श्रेष्ठ मिला, समझनेकी शक्ति मिली और खाने पीनेकी असुविधा नहीं, ऐसे सब साधन मिले, तो इस समय कर्तव्य क्या है कि ऐसा ज्ञान उत्पन्न कर लें कि जिसके कारण संसारके ये सब दुःख दूर हो जायें। रहना कुछ नहीं है साथ, पर ज्ञान बना लिया जाय तो वह ज्ञान साथ चलेगा। मरनेपर भी साथ जायगा, पर यहाँके ये ठाठ-बाट ये कुछ भी साथ न जायेंगे।

(१८) आत्मज्ञान द्वारा ही सांसारिक संकटोंसे छुटकारा—

संसारके संकटोंसे छुटकारा पाना है तो अपने आत्मा का सही ज्ञान करना होगा और अपने आपको देख-देखकर ही तृप्त रहना होगा। बाहरी पदार्थोंका लालच त्याग देना होगा, तब आत्मामें अनाकुलता अथवा शांति प्राप्त हो सकती है। तो प्रभु जिनेन्द्रदेवका स्तुति आचार्य कर रहे हैं कि आपके मति-ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान—ये तीनों प्रमाणज्ञान तो सहज ही हुए हैं और इस ज्ञानबलसे आपने मोक्षमार्ग स्वयं समझ लिया। मुझे शान्ति कैसे मिलेगी ? इस बातको समझनेके लिए लोग जगह-जगह घूमते हैं, पूछते हैं, यत्न करते हैं,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

लेकिन तीर्थंकर देवने तो गृहस्थावस्थामें ही सारे निर्णय कर रखे थे कि मोक्षमार्ग यह है। यह ज्ञान बाह्यपदार्थोंमें न फंसे और अपने ज्ञानानन्दस्वरूप आत्माको जानकर ही तृप्त रहे तो यहाँ मिलेगी आत्माको शान्ति। इसका मार्ग क्या है? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, इस रत्नत्रयरूप मार्गको तीर्थङ्कर देवने अपने ज्ञानबलसे गृहस्थावस्थामें रहते हुए सब जान रखा था। तब ही तो कभी भी वे विरक्त होकर जिनदीक्षा धारण करके थोड़े ही समयमें केवलज्ञान प्राप्त कर लेते हैं।

(१६) प्रभुकी स्वयंभुता व दिव्यचक्षुष्मत्ता—

प्रभुने मोक्षपदवीको स्वयं जान लिया, इसी कारण हे भगवान! आप स्वयंभू कहलाते हैं, खुद अपने आप तत्त्वका निर्णय कर लेते हैं और खुद अपने आपमें अपने आपको जोड़कर स्वयं ही आप परमात्मा हो जाते हैं। आप स्वयंभू कहलाते हैं। स्वयंभूका अर्थ है—जो खुद हो जाय। भगवान तीर्थंकर जो परमात्मा हुए हैं तो क्या किसी दूसरेकी मददसे हुए है? यहाँ कोई धर्म करना चाहता हो, इसलिए कि मैं संसारके सर्व संकटोंसे छूटूं, तो उसे धर्म करनेके लिए क्या किसी दूसरेकी जरूरत होती है? हाँ थोड़ा समझने सीखनेके लिए जरूरी भी है, मगर धर्म जो मिलेगा वह खुदको अपने आपमें मिलेगा, किसी दूसरेकी मददसे न मिलेगा। तो प्रभु

http://www.jainkosh.org

आप तो धर्ममूर्ति हैं। धर्म ही धर्म प्रकट है, इस कारणसे स्वयंभू कहलाते हैं। ऐसे दिव्यचक्षु जिस भगवानके ज्ञान हैं, ऐसा ज्ञान यहाँ हम लोगोंके नहीं पाया जा रहा। इस लोकमें भी बड़े-बड़े वैभवशाली पुरुष हैं नारायण, प्रतिनारायण, चक्रवर्ती, बलभद्र आदि कि जिनके अतुल वैभव पाया जाता है, बड़े-बड़े पुण्यके पाठ पाये जाते हैं, छहों खण्डका राज्य जिनके अधिकारमें है, जो सर्व वैभवोंके स्वामी हैं, ऐसे-ऐसे बड़े-बड़े पुण्यवान पुरुष भी इस लोकमें मिलेंगे, लेकिन उनके भी वे दिव्यनेत्र नहीं हैं जो कि तीर्थंकर भगवानके गर्भमें, जन्मसमयमें और गृहस्थावस्थामें भी थे, ऐसे दिव्यचक्षु इस समय हम आप लोगोंके नहीं पाये जा रहे हैं।

(२०) भगवद्गुणस्मरणसहित भगवत्पूजाकी लाभकारिता—

जब भगवानकी पूजा करते हैं तो विशेषकर हमें ध्यान में लाना चाहिए। भगवानके गुण, भगवानका शुद्ध स्वच्छ स्वरूप, जिससे यह पता लगता रहे कि हम दुःखी हैं तो इस बिगाड़से दुःखी हैं और भगवान सुखी हैं तो इस ज्ञानकी स्वच्छतासे सुखी हैं। भगवानका क्या गुण है? यही गुण है कि उनका ज्ञान शुद्ध हो गया। हम आपका ज्ञान यहाँ अशुद्ध है। भला बतलाओ कि जगतमें अनन्त जीव हैं, उन अनन्त जीवों में से घरमें कोई दो-चार जीव पैदा हो गए तब उनको यह मान लिया कि ये मेरे ही पुत्र हैं, मेरे ही बच्चे हैं, तो यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बिगड़ा हुआ ज्ञान रहा कि नहीं ? जब जगतमें अनन्त जीव हैं तो उनमेंसे यह छाँट लिया कि ये तो मेरे हैं, ये पराये हैं तो यह तो एक मलिनताकी बात है ना ? अपना तो अपने स्वरूप के सिवाय कुछ भी नहीं है दुनियामें। यह देह भी अपना नहीं, फिर ये दूसरे जीव अपने कैसे हो सकते हैं ? वे तो प्रकट भिन्न हैं। तो जगतके अनन्त जीव सभी पर हैं, एक मेरा आत्मा ही मेरे लिए सब कुछ है। अब इन परजीवोंमें से कुछको अपना समझना, कुछको गैर समझना, यह तो ज्ञानकी मलिनता ही हुई। ज्ञानको तो सही जानना चाहिए था। सभी जीव मेरे स्वरूपसे निराले हैं, मैं सभी जीवोंसे निराला हूं, ऐसा न जानकर कुछको मान लिया कि ये मेरे हैं, कुछको मान लिया कि ये गैर हैं तो यह तो इसकी मलिनता है।

(२१) लौकिक मनुष्योंकी अपेक्षा देवोंको आत्मज्ञान होनेसे दुःखोंका अभाव—

यहाँ लोकमें हम आप जीवोंके ऐसा स्वच्छ ज्ञान प्रकट नहीं हुआ है, पर भगवानके स्पष्ट बोध है कि मेरा तो यह मेरा ज्ञानदर्शनस्वरूप आत्मा है और बाहर जितने संयोगमें आये हुए पदार्थ हैं चेतन अथवा अचेतन, ये सभी पदार्थ मुझसे निराले हैं—ऐसा सब ज्ञान है उनके और यह ज्ञान जब अपने ज्ञानस्वरूपमें जुड़ता है, अपने आत्माके ध्यानमें लगता है तो इस अन्तरङ्ग तपश्चरणके प्रतापसे ज्ञानमें इतनी शुद्धि प्रकट

हो जाती है कि वहाँ रागद्वेष रंच भी नहीं रहता, और जो कुछ दुनियामें है वह सब एक साथ स्पष्ट झलक जाता है। तो भगवानका स्वरूप क्या है ?.....स्वच्छ ज्ञान। तब ही यह परमात्मा हैं, पूज्य हैं, उत्कृष्ट हैं, कृतकृत्य हैं। जो कुछ किया जाना चाहिये था वह प्रभुने कर लिया है। अब उनको करने के लिए जगतमें कुछ काम शेष नहीं रहा। जो उचित था, एक मात्र करने योग्य था वह सब कुछ कर लिया गया। तो भगवानका स्वरूप है स्वच्छ ज्ञान होना। उस स्वच्छ ज्ञानको अपनी दृष्टिमें लें तो भगवानकी सही पूजा कहलायगी। और यदि घर खुश रहे, वैभव बढ़े, लोग अच्छे रहें, मेरी तन्दुरुस्ती रहे, कुछ भी विचार करके भगवानकी पूजा की जा रही हो तो वहाँ भगवानके शुद्ध ज्ञानको खबर ही नहीं है। वह पूजा क्या कहलायगी ? तो गुणस्मरण करते हुए पूजा करे तो उसमें अपनेको लाभ होता है।

(२२) प्रभुकी सहजानन्दमयता—

और भी देखिये—भगवानका स्वरूप क्या है ? शुद्ध आनन्द। ऐसा अलौकिक आनन्द कि जिसमें कभी भी आकुलताका प्रवेश नहीं हो सकता। जगतमें है क्या कोई ऐसा आनन्द ? सुबह कुछ मौज लिया तो घंटे भर बाद कोई दुःख आ गया। जिन विषयोंको भगता है, भोगते समयमें कुछ मौज मानता है, पर भोगनेके बाद वही दुःख पाया जाता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

तो इस जगतमें कोई भी स्थिति ऐसी नहीं है कि जहाँ इस जीवको चैन मिलती हो। तो यह सब अनर्थ है। यहाँके ये कोई समागम सारभूत नहीं हैं, ऐसा जाना तीर्थंकरोंने स्पष्ट रूपसे, तो उन्होंने इस शरीरका परिहार करके अपने आत्माके स्वरूपमें मग्न होनेका पौरुष किया। भला बतलावो कि तीर्थंकरके जन्मसमय स्वर्गोंसे इन्द्र आते हैं और उनका अभिषेक मेरुपर्वतपर किया करते हैं। अभिषेकके बाद वे इन्द्र और देव भगवानके पास बने रहते हैं और उन जैसा बालक बन-बनकर उनको प्रसन्न रखा करते हैं। जो उतना अतुल वैभव था वह भी सब कुछ त्यागकर निर्ग्रन्थ होकर जंगल गए। उस समय उनके एक शरीर मात्रका ही परिग्रह रहता है। वे अपने आत्माके ध्यानमें धुन बनाये रहते हैं। तो बड़ों-बड़ोंने तो इन समागमोंका त्याग किया और अपने आत्मामें अपनेको जोड़ा। तो समझना चाहिए कि सारकी बात यही है। यहांके ये परिकर, ये मेरे लिए सारभूत नहीं हैं। तो हे जिनेन्द्र! तुम्हारे ३ ज्ञान सहज ही थे, इस कारण मोक्षमार्गको स्वयं जान लिया था और उसपर चलकर आप स्वयंभू हुए हैं। ऐसा केवलज्ञान प्रकट हुआ कि सारा विश्व ज्ञानमें आया। इस लोकमें ऐसे दिव्यनेत्र बड़े-बड़े पुण्यवान पुरुषोंके भी नहीं पाये जाते। इस दिव्यबलसे आपने सहज अनन्त आनन्द प्राप्त किया। हे सहजपरमानन्दधाम! तुम्हारी थोड़ी भी निश्चय-

http://www.jainkosh.org

स्तुति सर्वकर्मोंके क्षयके लिये उपायभूत है। हे अक्षय ज्ञानमूर्ति आनन्दमय परमात्मदेव! आपको मेरा भावसहित नमस्कार हो।

व्रतेषु परिरज्यसे निरुपमे च सौख्यस्पृहा,
बिभेष्यपि च संसृतेरसुभृतां बधं द्वेक्ष्यपि।
कदाचिदुदयोदये विगतचित्तकोऽप्यञ्जसा,
तथापि गुरुरिष्यसे त्रिभुवनैक बन्धुर्जिनः॥ ३॥

(२३) काव्यछटाओंमें प्रभुस्तुति—

इस पात्रकेशरी स्तोत्रमें आचार्यदेव भगवानकी स्तुति कर रहे हैं। तो स्तुति करनेको पद्धतियां नाना होती हैं। कहीं निन्दा रूपसे वचन लगें और हो रही स्तुति, कहीं सीधे प्रशंसाके शब्दोंमें की जाती है स्तुति, कहीं गुणके वर्णनमें की जाती है स्तुति और कहीं गुणोंपर आश्चर्य न दिखाते हुए भी स्तुति की जाती है। जहां-जहां प्रभुके प्रति भक्ति बसी हो वहां कैसे ही वचनोंमें स्तुति की जाय तो वह स्तुति भक्तिपूर्ण ही कहलाती है। जैसे यहां व्यवहारमें जिनसे बहुत प्रेम मिलाप है, यदि कोई वचन अविनय जैसे भी लगें तो भी वहां प्रीति ही है, वहां अप्रीति नहीं है। तो प्रभुकी यहां भक्ति की जा रही है एक काव्यछटामें। क्या कह रहे हैं आचार्यदेव कि हे भगवन्! आप उत्तम तप व्रतमें तो राग करते हो और निरुपम सुखमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्पृहा करते हो, और संसरणसे डरते हो, हिंसासे द्वेष करते हो। और आपके अदयाका उदय है, और आप बेचित्त हो रहे हो, फिर भी लोग तुम्हें गुरु कहते हैं, तीन लोकमें नाथ कहते है, जिनेन्द्र कहते हैं। यह बड़े आश्चर्य जैसी बात है। इस स्तवनमें क्या छटा दिखायी कि ऐसे शब्दों द्वारा प्रभुकी महिमा बतायी जा रही है कि सुननेमें लगेगा कि यह तो भगवानके ऐब बता रहे। देखिये—भगवन्! आपमें राग है, स्पृहा है, भय है, द्वेष है, अदयाका उदय है और आपका चित्त भी नहीं है, फिर भी लोग आपको गुरु कहते हैं। सुननेमें तो ऐसा लग रहा कि यहां रागद्वेषादिक बताये जा रहे हैं, पर तथ्यपर विचार करें तो वह प्रशंसा है।

(२४) शिवसाधनोंमें वृत्ति व अशिववृत्तिसे निवृत्तिका चित्रण—

भगवानको व्रतोंमें राग था मायने अव्रतसे उनका हटाव था और संयम व्रतमें उनका आदर था, सो ठीक है। इस रागसे कहीं दोष नहीं जाहिर होता। और निरुपम सुख में आपकी स्पृहा है अर्थात् उपमारहित अर्थसे सम्बंध रखने वाला जो आनन्द है उस आनन्दमें आपकी स्पृहा है, सो ठीक ही है। वैषयिक सुखोंसे हटकर जो आत्मीय आनन्दमें लगे उसकी बुराई क्या है? वह तो प्रशंसा है। और भगवन्! आप संसरणसे डरते हो, तो शब्दमें तो जरूर डरपोक जैसा बता दिया कि आप डरपाक हो, भयभीत हो, मगर किससे

डरपाक बताया?····संसारसे। चतुर्गति भ्रमणसे भयभीत बताया। सो क्या तात्पर्य है कि अब आपका संसार और भ्रमण नहीं रहा। और नाथ! आप हिंसासे द्वेष करते हो, कहीं प्राणियोंकी हिंसा न हो जाय। तो सुननेमें तो शब्द आया कि देखो भगवन्को द्वेषी भी बना रहे, मगर किससे द्वेष बना रहे? हिंसासे। मायने हिंसा नहीं करते। व्रत धारण करते। गुणका आदर ही तो बताया गया है। सो ठीक है। आप प्राणियोंके वधसे द्वेष भी करते हो और किसी भी समय आपके दयाका उदय नहीं, आपके दया नहीं उत्पन्न होती। तो सुननेमें ऐसा लगता है कि भगवानको निर्दय कहा जा रहा है। लेकिन प्रभुका स्वरूप ऐसा है कि न उनके दयाका उदय है और न क्रूरताका। वे तो वीतराग हैं। जिसके राग हो वही तो दया करेगा। भगवान तो वीतराग हैं, उसमें न राग है, न द्वेष है, न दया है, न क्रूरता है। सो कहा कि हे प्रभो! आपके अदयाका उदय है और आप विगत चित्त हो।

जैसे किसीका दिल न मिले, दिल रूस जाय और उल्टा सोचने लगे तो कहते हैं कि वह तो बेदिल है, उसका क्या हृदय है? जिसे कहते हैं हृदयहीन। भगवानको हृदय-हीन कह रहे कि हे प्रभो! आप हृदयहीन हो रहे, सो ठीक है। जहाँ केवलज्ञान प्रकट हो गया है वहाँ चित्त तो है ही नहीं। चित्तहीन होना क्या बुरा है? जैसे किसी पुरुषको कहा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

जाय कि तू तो निकम्मा है तो सुननेमें ऐसा लगता है कि हमें तो निकम्मा कह दिया याने एक बुरे अर्थमें उसे समझ लिया, पर निकम्माका शुद्ध अर्थ है निक्कम्मा—निष्कर्मा याने सिद्ध भगवान। तो यह तो उसकी प्रशंसा ही हुई। हे भगवन्! आप इसीलिए तो तीन लोकके गुरु हो कि आपने व्रतोंमें राग किया, निरुपम आनन्दके लिए स्पृहा हुई, उसमें बढ़े, अनन्त आनन्द पाया और संसारसे भयभीत हुए, दूर रहे, संसारका किनारा कर गए और हिंसा झूठ, चोरी आदिक समस्त पापों से विरक्त हुए, इनसे द्वेष रहा मायने इनको आपने अपने पास फटकने भी नहीं दिया। और रागद्वेषका आपके उदय नहीं है, आप मनहीन हैं। अब आप विचार नहीं करते, किन्तु केवल ज्ञानसे सहज ही तीनों लोकालोकको स्पष्ट जानते हैं। सो ऐसा जो भी हो वह तीनों लोकका गुरु है ही। तीनों लोक का बन्धु है, जिनेन्द्र है, इसमें कौनसा सन्देह? इस स्तवनमें भगवानकी भक्ति भी दिखाई गई है, किन्तु मत-मतान्तरोंकी चर्याका समीक्षण भी है। मुनिचर्या कैसी होती है, क्यों वह निर्दोष है उसके विरुद्ध अन्य चर्याओंमें दोष क्यों है, इसपर भी प्रकाश डाला है। तो बड़ा ध्यान रखकर यह स्तुति की गई है। इस छन्दके स्तवनमें यह अर्थ निकला कि ये जिनेन्द्र भगवान तीनों लोकालोकके हित करने वाले एक बन्धु हैं और सर्व जीवोंके हितकारी बन्धु हैं, इसलिए कि वे समस्त पापोंसे

http://www.jainkosh.org

दूर हैं और अच्छे कार्योंका उपदेश देते हैं।

तपः परमुपाश्रितस्य भवतोऽभवत्केवलं
समस्तं विषयं निरक्षमपुनश्च्युति स्वात्मजं।
निरावरणक्रमं व्यतिकरादयेतात्मकं,
तदेव पुरुषार्थसारमभिसम्मतं योगिनाम् ॥ ४ ॥

(२५) परमपुरुषका पुरुषार्थसार—

हे प्रभो! आपने उत्कृष्ट तपका आश्रय लिया था। ऐसे उत्कृष्ट तपका आश्रय लेने वाले आपको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। जो केवलज्ञान समस्त पदार्थोंको विषय करने वाला है। जो भी सत् दुनियामें है उसके जाननहार हैं। देखो हम लोगोंके जाननेकी तो इच्छा रहती है और जानकारी हो नहीं पाती, इसीलिए तो दुःखी हैं। जैसे आनन्द नहीं मिला उससे हम दुःखी हैं, उसी प्रकार जाननेकी इच्छा तो होती है, पर जानना बन नहीं पाता तो दुःखी होते हैं। देखो—आनन्द जो हमें प्राप्त नहीं हो रहा उसका एक कारण यह भी है कि हम जानना तो चाहते हैं सारे विश्वको, मगर जानना हो नहीं रहा है। तब प्रभुको देखो—वे सारे विश्वको, लोकालोकको, भूत, भविष्य, वर्तमानको सबको एक साथ स्पष्ट जानते हैं। जो सबको जान जाय उसको जाननेकी इच्छा क्यों होगी? और जो सबको जान रहा है उसे किसी प्रकारकी आकुलता क्यों मचेगी? तो प्रभु सर्व विश्वके जाननहार हैं, सो आपने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

एक परम आध्यात्मिक तपश्चरण किया था, उसका प्रभाव है कि आपके केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। कैसा है वह केवलज्ञान ? इन्द्रियातीत है। इन्द्रिय द्वारा नहीं जाना जाता कुछ, किन्तु इन्द्रियसे परे केवल आत्माके बोधसे ही सर्व कुछ पहिचाना जा रहा है। तो आपका वह केवलज्ञान अतीन्द्रिय है, फिर भी वह केवलज्ञान नष्ट होने वाला नहीं है। केवलज्ञान तो अनन्त काल तक वैसा केवलज्ञान केवलज्ञान ही बर्तता चला जायगा। तो ऐसा वह केवलज्ञान अविनाशी है और अपने आत्मासे उत्पन्न होता है।

देखो अतुल ज्ञाननिधि, अतुल आनन्द सब कुछ आत्मा में सदा हाजिर हैं, किन्तु उसके लिए दृष्टि बनायी है क्या कि परकी ओर दृष्टि लग रही है, इसलिए हैरानी हो रही, परेशानी हो रही। जो अपने आत्मासे उत्पन्न हुआ ज्ञान है वह ज्ञान तो सारे लोकालोकका जाननहार है और इन्द्रिय या अन्य साधनोंकी अपेक्षा कर-करके जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह ज्ञान थोड़ा जानता है, सबको नहीं समझता। तो प्रभो ! आपने परम तपश्चरणका आश्रय किया, अतएव वहाँ केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। आपका केवलज्ञान सर्वको जानता है, इन्द्रियसे परे है, फिर कभी नष्ट होता नहीं। अपने आत्मासे उत्पन्न हुआ है और निरावरण है तथा एक साथ जानने वाला है।

(२६) निरावरण ज्ञानका महत्त्व—

जो ज्ञान निरावरण होगा वह एक साथ सबको जान सकने वाला है। आवरण क्या था ? कोई कर्मका आवरण, अज्ञानका आवरण, विषयकषायका आवरण। जहाँ रागद्वेष मोह हटा, ज्ञानावरण भी हटा वहाँ एक साथ सबको जानने का सामर्थ्य प्रकट हुआ। तो यह केवलज्ञान निरावरण है और एक साथ जाननहार है। इस ज्ञानमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं है। ऐसा नहीं कि आज यहाँकी बात जान रहे, कल दूसरी जगहकी जान रहे, वहाँ व्यतिरेक नहीं है, जानता है। निरन्तर सर्वके जाननहार हैं। सो कहते हैं कि हे प्रभो ! जो आपने किया वही सारभूत पुरुषार्थ है। योगी जनोंको वही करना योग्य है। यही योगी जनोंने बताया है कि बस पुरुषार्थ तो वह है कि जो प्रभुने किया। प्रभुको, जिनेन्द्रको हम नेता कहते हैं। नायक या नेता कौन कहलाता है जो खुद उस मार्गपर चलकर सफल हुआ हो, वह उस मार्गको बताये तो उसका नाम नेता है। दोनों बातें होनी चाहिएँ। उस रास्ते पर चलकर विजय प्राप्त कर चुका हो और वही दूसरोंको रास्ता बताये तो उसका नाम है नेता। और जो खुद तो चलना नहीं चाहता और दूसरोंको रास्ता बताये तो वह नेता नहीं है।

(२७) निरावरण ज्ञानके महत्त्वका अधिक स्पष्टीकरण—

Report any errors at vikasnd@gmail.com

जैसे प्रभु संसारसे हटे, रागद्वेषसे दूर हुए और संसार के तटपर पहुंचे और उनका हुआ उपदेश, तो वे नेता कहलाय। प्रभु जिनेन्द्रदेव ! मोक्षमार्गके नायक हुए हैं। और जो खुद मुक्तिको प्राप्त कर ले और दूसरोंको रास्ता बताये नहीं, मौन रहे तो उसे नेता तो नहीं कहते। तो नेता कहते हैं ले जाने वालेको। ले जाना कब बनता है ? जब खुद भी चल रहा हो और दूसरोंको ले जा रहा हो तब उसे कहेंगे ले जाने वाला। प्रभु, आपने तपश्चरण किया और लोगोंको उपदेश दिया और करके दिखाया, इसलिए जो आपने किया वही वास्तविक पुरुषार्थ है, ऐसा योगी जन समझते हैं।

परस्परविरोधवद्विविधभङ्गशाखाकुलं,
पृथग्जनसुदुर्गमं तव निरर्थकं शासनम्।
तथापि जिन ! सम्मतं सुविदुषां न चात्यद्भुतं,
भवन्ति हि महात्मनां दुरुदितान्यपि ख्यातये ॥५॥

(२८) प्रभुशासनकी अलंकारमें निन्दारूपसे शब्द जोड़कर महिमाका वर्णन—

यहाँ जो कुछ पढ़ा जा रहा है उसमें प्रभुकी स्तुति गायी जा रही है। अब परख लो कि प्रभुकी स्तुति गानेके क्या-क्या ढंग होते हैं ? अभी जो प्रसिद्ध स्तुतियाँ हैं वे प्रायः सीधी-सादी हैं, मगर छटावोंके साथ कवि किस-किस प्रकारसे स्तुति करता है, वह आपको इस स्तवन दिखेगा। हे भगवन् ! तुम्हारा शासन निरर्थक है। सुननेमें ऐसा लग रहा होगा कि यह प्रभुका गुणगान किया जा रहा है या प्रभुकी निन्दा की जा रही है कि हे प्रभो ! आपका उपदेश निरर्थक है, क्योंकि आपने उपदेश दिया, जो आपके आगम वचन हैं उनमें परस्पर विरोध दिखता है। कभी जीवको नित्य कह दिया, कभी अनित्य कह दिया, तो एक जीवको नित्य भी बता रहे, अनित्य भी बता रहे, तो परस्पर विरोधको लिए हुए है। और इतना ही नहीं कि थोड़ा बहुत विरोधकी बात हो, नाना प्रकारकी भंग शाखायें निकली हैं। कोई एक दो बात तो नहीं है कि जीव नित्य है और अनित्य है। ७-७ भंग बताये गए हैं। जिसने स्याद्वादका अर्थ सुना होगा वे इन भंगशाखाओंका भाव समझते हैं। और सप्तभंगी ही नहीं, उसमें और भी भंग निकलते है तो परस्पर विरोधवान वचन हैं। नाना प्रकारकी भङ्ग शाखाओंसे आकुलित वचन हैं और इतनेपर भी जो पृथक् जीव हैं, जो आपके शासनकी बातको नहीं मानते, नहीं समझते, साधारण जन हैं उनके लिए तो दुर्गम हैं आपके वचन। कोई अर्थ ही नहीं समझ सकता।

कहते हैं ना कि यह बड़ी कठिन व्याख्या है, इसका अर्थ ही नहीं समझ सकते। तो जब आपके बतानेमें परस्पर विरोध आ रहा हो, नाना भंगशाखायें उठ रही हों और साधारणजन, बाह्यजन उसे समझ न सकें तो आपका वचन निर-

http://www.jainkosh.org
Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

थंक रहा कि नहीं, और इतनेपर भी बड़े बड़े विद्वान् जन आपका बड़ा आदर करते हैं, सम्मान करते हैं। देखो जब समवशरणमें विराजमान हों तो देवदेवियाँ आते हैं, गुणगान करते हैं, मनुष्य तिर्यंच सभी आते हैं। उससे आपकी महिमा बढ़ी हुई है। हमें बड़ा आश्चर्य लग रहा, लेकिन तथ्यपर अगर विचार करें तो आश्चर्य न लगेगा। कैसे आश्चर्य न लगेगा? सो आगे सुनिये—

(२६) वस्तुमें परस्पर विरुद्ध धर्मोंके समावेशका दिग्दर्शन—

देखो—आपका वचन किस विधिसे परस्पर विरोधवान है सो देखो—एक वस्तुमें परस्पर विरोधका अनेक धर्मों का समावेश रहता है तब वह वस्तु है। अब आप ही बताओ, यह चौकी है। तो यह चौकी तब है जब यह चटाई, तख्त, किवाड़ वगैरा अन्य कुछ न हो। एकको छोड़कर बाकी जितनी चीजें हैं वे यदि न हों तब तो यह चौकी रहेगी। जैसे कहा कि यह चौकी है तो इसमें यह अर्थ प्रवेश किए हुए है ना कि यह चौकी है, यह चटाई नहीं, यह भींत नहीं, यह पत्थर नहीं, पुस्तक नहीं याने चौकीके अलावा दुनियाभरकी जितनी अनन्त चीजें हैं ये कुछ यह नहीं हैं। चौकीमें चौकीका तो अस्तित्व है और चौकीमें बाकी चीजोंका अस्तित्व ही नहीं है। तो देखो ये विरोधकी दो चीजें इसमें हैं कि नहीं, अस्तित्व भी है, नास्तित्व भी है तब तो यह चौकी है, मगर कोई कहे

कि चौकीमें अस्तित्व अस्तित्व ही है, नास्तित्व नहीं है तो क्या अर्थ निकला कि यह चौकी है, यह चटाई है, यह दुनिया भरकी बात है तो चौकी क्या रही? तो वस्तुका स्वभाव ही ऐसा है कि उसमें विरुद्ध धर्मका समावेश रहेगा ही, नहीं तो उसका अस्तित्व न रहेगा।

भगवानने अगर ऐसा बताया है तो सत्य ही तो बताया है कि कोई अतथ्य है? तथ्यका समावेश है, असत्य कुछ नहीं। अब इसमें दो धर्म आ गए—जीव नित्य है और अनित्य है। द्रव्यदृष्टिसे याने जीव सदा रहेगा, इस कारण तो नित्य है और जीवकी दशा बदलती रहती है, इस कारण अनित्य है। तो जब जीवमें नित्यपना, अनित्यपना दो बातें आ गईं, यों इन दो को एक साथ बता नहीं सकते, एक साथ बोल नहीं सकते। तब तो अवक्तव्य धर्म भी है। तो अब यहाँ ३ बातें आ गयीं। अब उन ३ बातोंको २-२ करके जोड़ो—नित्यानित्य, नित्यअवक्तव्य, अनित्यअवक्तव्य और ३ को जोड़ो तो नित्यानित्य अवक्तव्य। सो ७ भङ्ग हो जाते हैं। तो प्रत्येक वस्तु परस्पर विरुद्ध धर्मसे युक्त है और उसका वर्णन करनेमें नाना भङ्ग उत्पन्न हो जाते हैं। सो आपका वचन सही तो बतला रहा है।

(३०) स्याद्वादविधिके निर्णयकी परमार्थ सार्थकता—

यहाँ कहा जा रहा कि जो पृथक् जीव हैं, जो जैन-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

शासनसे विपरीत हैं उनके लिए यह बात समझनी कठिन है, सो भी यही बात है और जो यह कहा जा रहा कि भगवानका शासन निरर्थक है सो सही बात है। सार्थक तो तब कहलाता जब कुछ धन मिलता, पशु-पक्षी बनते, जन्म मरण करते। मगर संसारका कोई प्रयोजन न रहा, केवल एक मुक्ति आनन्द मिले तो संसारकी दृष्टिसे निरर्थक रहा ना। सो सत्य बात है कि जो महान् पुरुष हैं उनकी कठिन बात भी प्रसिद्धिके लिए हो जाती है याने बड़े पुरुष हल्की बात भी कह दें तो वह भी प्रशंसाके लायक बन जाती है। कितना बड़ा आदमी और कितनी सरल बच्चों जैसी बात कह रहा? ऐसे प्रभुके वचन दुर्भाषित हैं, कठिन हैं, लेकिन ये भी ख्याति के लिए बन गए। तो इस छन्दमें भगवानके शासनके सम्बंध में बताया है कि प्रभुका शासन एक हितकारी शासन है, वस्तुके यथार्थस्वरूपको बताने वाला शासन है। जो इस शासन का अनुकरण करेगा वह अवश्य मुक्ति पायेगा।

देखिये—पहिली ही बात है, विचार कर लो—जैसे अस्तित्व और नास्तित्वको बात कही—मैं हूं तो अपने स्वरूप से हूं कि दुनियाभरके स्वरूपसे हूं? दुनियाभरके पदार्थोंके स्वरूपसे मैं नहीं हूं तब ही मैं 'हूं' रह सकता हूं। यदि मैं शेर बन जाऊं, बिल्ली कुत्ता भी बन जाऊं तब तो यहाँ भगदड़ मच जायगी। लोग ठहरेंगे कहाँ और मैं रहूंगा कहाँ? तो

प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे है और परस्वरूपसे नहीं है। यह जो बात कही जा रही है वह तो जैनधर्मकी प्रारंभिक कक्षाओं की बात है, पर कठिन क्यों लग रही है कि अभी तक साधारण बातें ही सुनना पसंद किया था, कुछ कठिन बात सुनने की ओर दृष्टि ही नहीं रखी। मगर धर्मका आधार, कल्याण का प्रारम्भ इस ज्ञानसे ही शुरू होता है। प्रत्येक पदार्थको इस तरह देखें कि वे अपने स्वरूपसे हैं और परस्वरूपसे नहीं हैं। यह ही स्याद्वाद है।

(३१) स्याद्वादकी सार्वभौमता—

देखिये—स्याद्वादका सहारा लिए बिना किसीका गुजारा भी नहीं चल सकता। कोई दार्शनिक, कोई पुरुष स्याद्वादका तो निषेध करता हो, किन्तु उसके जीवनमें स्याद्वाद उतरा हुआ रहता है। क्या वे घरके किसी पुरुषको, बच्चेको अनेक धर्मोंमें नहीं निरखते कि यह अमुकका पिता है, अमुकका पुत्र है, अमुकका मामा है, अमुकका चाचा है, तो लिया ना स्याद्वदका सहारा। कोई पुरुष आपसे हजार रुपये उधार ले गया, मानो एक सालमें लिए ब्याजपर ले गया। अब आप उससे एक साल बादमें ब्याज सहित कुल रुपये माँगते हैं। क्या वह यह कह देगा कि अरे तुम पागल क्यों बन रहे हो? जिस आत्माने रुपये दिये थे वह तो अब रहा नहीं और जिस आत्माको रुपये दिये थे वह भी नहीं रहा,

'अब तुम रुपये क्यों माँगते ?....यों तो कोई नहीं कहता, न कोई मानता। आप बराबर ब्याजसहित अपने रुपये ले लेते हैं, क्योंकि नित्यानित्यात्मकतापर विश्वास है। तो स्याद्वादका आश्रय लिए बिना तो किसीका काम ही नहीं चल सकता। व्यवहारमें देख लो—स्याद्वाद सब जीवोंमें उतरा कि नहीं।

(३२) जैनधर्मका मूल स्याद्वाद—

जैनधर्मका मूल स्याद्वाद है और आचार्यने भली प्रकार बताया है जिस उपदेशमें, जिन वचनोंमें स्याद्वादकी मुद्रा लगी हो उसे तो मानना कि यह प्रमाणीक ग्रन्थ है और जहाँ स्याद्वाद न हो वह अप्रमाणीक है। जैसे व्यापारी लोग कहते हैं कि देखो—हमारा ट्रेडमार्क देखकर माल लेना, वे अपनी प्रमाणीकता बतानेके लिए कहते हैं ना। तो इसी तरह वह आगम प्रमाणीक नहीं जिसमें स्याद्वादकी मुद्रा न हो। तो पदार्थ अपने स्वरूपसे है, परस्वरूपसे नहीं है। इस निर्णयमें रागद्वेष मिटानेका अवसर है। मैं मैं ही हूं, अन्य कुछ हूं ही नहीं। मेरा किसीसे सम्बंध ही नहीं। मेरा अस्तित्व मुझमें है। अब मोह क्यों किया जाय ? रागद्वेष भी क्यों उत्पन्न हो ? तो हमको वस्तुनिर्णय होनेपर धर्मका अवसर मिलता है। यह अनेकान्तमयी है जिनवाणी, इसलिए सरस्वतीको नमस्कार किया है। वहाँ बताया है कि यह अनेकान्तमयी मूर्ति है। तो प्रभुका यह स्तवन चल रहा है कि हे प्रभो ! आपके ऐसे वचन हैं और बड़े-बड़े विद्वान जनोंके द्वारा सराहनीय हैं, सो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। बड़े-बड़े पुरुषों के ऐसे कठिन वचन भी ख्यातिके लिए हुआ करते हैं। स्तवन किया है कि भगवानने जो उपदेश दिया है वह सत्य है। भगवानने जो आचरण किया है वह शुद्ध विधिसे है। हम उनके उपदेशोंपर चलेंगे तो हम भी संसारसंकटोंसे छूटेंगे और मुक्त होंगे।

सुरेन्द्रपरिकल्पितं बृहदनर्घ्यसिंहासनं
तथाऽऽतपनिवारणत्रयमथोल्लसच्चामरम्।
वशं च भुवनत्रयं निरुपमा च निसंगता
न संगतमिदं द्वयं त्वयि तथाऽपि संगच्छते ॥६॥

(३३) प्रभुकी निरुपम निःसंगता—

प्रभुभक्तिमें आचार्यदेव कह रहे हैं कि हे महाराज ! कहीं भी ये दो बातें एक साथ नहीं रह सकतीं। कौनसी दो बातें—(१) बहुत बड़ा वैभव व दूसरोंको वशमें करना और निःसंगता याने बहुत-बहुत वैभव हो और फिर भी कहा जाय कि ये निष्परिग्रह हैं तो जरा संगतसा नहीं मालूम होता। लेकिन महाराज, आपमें सब संगत हो जाता है। देखो—आपका ऐसा अमूल्य सिंहासन है कि देवेन्द्रोंके द्वारा रचा हुआ है। समवशरणमें प्रभुका सिंहासन देवेन्द्रोंके द्वारा रचा हुआ होता है। और इतनेपर भी लोग कहते हैं कि प्रभुमें निःसंगता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

है, कोई संग नहीं है, कुछ भी परिग्रह नहीं। और इतना बड़ा अमूल्य सिंहासन और बड़े-बड़े छत्र, बड़े-बड़े चमर जहाँ अनेक यक्ष, इन्द्र चमर ढोलते हैं, इतनी बड़ी भारी तो विभूति है और इसके अतिरिक्त देखें तो कैसे जादूगर हो आप कि तीनों लोकको आपने वशमें कर लिया। तो इतनी-इतनी बातें तो हमने देख लिया, आपके पास इतना बड़ा तो वैभव है और तुम ऐसे जादूका प्रयोग करते हो कि तीनों लोक तुम्हारे वश हो गये हैं, फिर भी लोग कहते हैं कि प्रभुमें निष्परिग्रहता है, निसंगता है, तो यह बात तो संगत नहीं होती, लेकिन तुममें सब कुछ संगत हो जाता है।

(३४) प्रभुके पास परिग्रह होनेपर भी सर्वज्ञ होनेके कारण सर्व घटित—

जैसे लोकमें कहने लगते कि छोटा करे तो नाम धरे और बड़ा करे तो उसमें सब संगत हो जाता है। किसी पुरुषसे कहा जाय कि तुम्हारे पास इतनी दूकान, इतने मकान, इतनी जायदाद है और फिर भी तुम निष्परिग्रह हो तो इसे कोई मानेगा तो नहीं। लेकिन हे प्रभो! आपके पास इतना बड़ा वैभव है कि समवशरण जैसा वैभव और किसे कहा जाय? जिसकी रचना देवेन्द्र करें और इतना बड़ा जादू (वशीकरण) कि तीनों लोकके इन्द्र, राजा, महाराजा, चक्रवर्ती, हाथी, पक्षी, सर्प आदिक सभीके सभी समवशरणमें पहुंचते हैं और

फिर भी लोग कहते हैं कि आपमें निःसंगता है। सो ठीक है, प्रभुमें सब घटित होता है। कारण यह है कि प्रभु हैं वीतराग सर्वज्ञदेव। उनके रंचमात्र भी रागद्वेष नहीं है। क्या समवशरण हो, क्या सिंहासन हो, कुछ भी ठाठ हो, उनके लिए क्या है? वहाँ तो रागका अंश भी नहीं है, इसलिए आपमें ये सब संगत हो जाते हैं। और रही जादूकी बात तो जादू आपने किया नहीं है, आपका वीतराग सर्वस्व स्वरूप प्रकट ही गया है और वही समझदारको रुचता है, इसलिए सारे समझदार इन्द्र हों या कोई हो, सब आपकी शरणमें आ जाते हैं।

त्वमिन्द्रियविनिग्रहप्रवणनिष्ठुरं भाषते
तपस्यपि च यातयस्यनवद्यदुष्करे संश्रितान्।
अनन्यपरिदृष्टया षडसुकायसंरक्षया स्वनुग्रह-
परोऽप्यहो! त्रिभुवनात्मनां नापरः॥ ७॥

(३५) प्रभुकी अलौकिक स्वनुग्रहपरता—

प्रभुकी स्तुति भक्तिमें अपनी एक प्राइवेसीमें आकर जब भक्तका अधिक सम्बंध हो जाता है प्रभुका जब अधिक दर्शन हो, मिलाप हो और अपने स्वरूपसे मिलान करके एकदम बहुत पहिचान वाले हो गए तब जैसे चाहे शब्दोंमें भक्ति की जा रही है। इस छन्दमें कहा जा रहा है कि भगवन्! बड़े आश्चर्यकी बात है कि लोग आपको करुणानिधान कहते

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं, आप दयाके सागर हो, आपमें बड़ी दया है, मगर देखो तो आपके कर्तव्य हैं क्या ? तुम ऐसे तो वचन बोलते हो कि इन्द्रियका नाश करानेमें चतुर हो। आपकी वाणी, आपका वचन ऐसा निष्ठुर है कि जिसमें बताया है कि कषायोंका निग्रह करो, शरीरका निग्रह करो, ऐसा इन्द्रियका निग्रह करानेमें चतुर, निष्ठुर आपकी वाणी है। और देखो—जो आपके आश्रयमें आता है, जो भव्य जीव आपका सहारा लेने आते हैं उनको बड़ी कठिन-कठिन तपस्यावोंमें आप लगा देते हो। और इन्द्रियका निग्रह करनेमें प्रवीण, निष्ठुर वाणी बोलते हो, फिर भी आश्चर्यकी बात है। आप करुणानिधान हैं।

देखो—आश्चर्य कुछ नहीं, सही-सही बात है। आप अनुग्रह करनेमें तत्पर हो, सो ठीक है, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। आपने ६ कायके प्राणियोंकी रक्षा की और ६ कायके प्राणियोंके मायने संसारके सर्व प्राणियोंकी रक्षाकी आप विधि बताते हैं, सो हर एकमें नहीं देखा जाता, इसलिए तीनों लोकके प्राणियोंमें आपको छोड़कर और कोई दयालु व शरण नहीं नजर आता। इस स्तुतिमें कुछ शब्द ऐसे हैं कि जिसमें विरोधसा लगता। अरे भगवानने इन्द्रियका निग्रह कराने वाले निष्ठुर वचन बोले, इसमें निष्ठुरताकी क्या बात है ? वह तो आत्माके हितकी बात है।

(३६) इन्द्रियविषयोंमें आत्माकी बरबादी—

देखो—आत्माकी बरबादी इन्द्रियविषयोंके आधीन होकर ही तो हो रही है। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र और मन—इन ६ के वशमें यह संसारी प्राणी है। इसी तरह संसारी प्राणीकी बरबादी हो रही है। तो बरबादीसे बचनेके लिए भगवानका यह उपदेश हुआ है कि हम इन्द्रियोंको, विषयोंको, कषायोंको समूल नष्ट करें। तो यह निष्ठुरताकी वाणी है क्या ? यह तो बड़ी दयाभरी वाणी है। और आपने जो दुष्कर तपश्चरणमें लगाया सो पापरहित तपश्चरणमें लगाया है। चूंकि इन्द्रिय और मन ऐसे उछृंखल हैं कि तपश्चरण विशेष तो न हो तो ये इन्द्रिय और मन खोटे विषयोंमें लगते हैं, इसीलिए आत्मकल्याणार्थीको ऐश आराम ठीक नहीं हैं, उसे तो किसी न किसी तपश्चरणमें लगे रहना चाहिए। तो आपने अपने आश्रयमें आये हुए भव्य जीवोंको जो तपश्चरणका मार्ग बताया वह भी सही है। और ६ कायके प्राणियोंको, एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय इन जीवोंकी रक्षाकी आपने विधियाँ बतायीं और किया। ५ स्थावर और एक त्रस जीव, ऐसे ६ कायके जीवोंकी आपने रक्षा की। इससे यह बात स्पष्ट प्रतीत हुई कि आप बड़ा ही अनुग्रह करनेमें तत्पर हो। सो ऐसे हे नाथ ! तीन लोकके आत्माओंके आपके अतिरिक्त कोई दूसरा शरण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

नहीं है, शरण्य नहीं है, भक्तिके योग्य नहीं हैं।

(३७) स्तवनसे इन्द्रियनिग्रहण, श्रमशीलता व करुणाकी शिक्षा—

इस छन्दमें शिक्षा भी यह दी गई है कि इन्द्रियका निग्रह करनेमें तैयार रहो, और इन्द्रियनिग्रह करनेके लिए सत्संगमें रत रहो। दूसरी शिक्षा यह दी गई है कि आप अपनेको ऐश आराममें मत लगाओ। वे गृहस्थ भी भूल करते हैं जिनकी आय अधिक है, और उसे ऐश आराममें लगाते हैं। अरे यदि आय अधिक होती है तो उसे धर्मकार्योंमें, परोपकार आदिमें खर्च करो। हाँ कोई आवश्यक कार्य हो उसके पीछे तो खर्च कर लेना ठीक है, पर बेकारके ऐश आरामके पीछे खर्च करना योग्य नहीं। कितना ही कुछ हो, हम परिश्रमशील रहें, आरामपसन्द मत रहें। यदि धन आता है तो उसे विषयसाधनोंमें न खर्च करें। उसे दान पुण्य, परोपकार में, धार्मिक आयतनोंमें खर्च करें। तो दूसरी शिक्षा यह दी गई है कि आप अपनेको धर्मकार्योंमें, शुभकार्योंमें, तपश्चरण में लगावें। तीसरी बात यह दिखाई गई है कि इस संसारके समस्त प्राणियोंके प्रति रक्षाका भाव रखो और रक्षा करनेका प्रयत्न करो।

ददास्यनुपमं सुखं स्तुतिपरेष्वतुष्यन्नपि
क्षिपस्यकुपितोऽपि च ध्रुवमसूयकान्दुर्गतौ।

http://www.jainkosh.org

न चेश! परमेष्ठिता तव विरुद्धयते यद्भवान्
न कुप्यति न तुष्यति प्राकृतिमाश्रितो माध्यमाम् ॥८॥

(३८) प्रभुभक्तिफल व वीतरागताका वर्णन—

हे नाथ! जो लोग आपकी स्तुतिमें तत्पर रहा करते हैं उन जीवोंको यद्यपि सन्तोष तो नहीं हो रहा, फिर भी अनुपम सुख देते हो, और जो आपके प्रतिकूल चलते हैं, आपकी निन्दा करते हैं, आपके स्वरूपको नहीं जानते, ऐसे पुरुषोंको यद्यपि आप क्रुद्ध नहीं होते तो भी आप उन्हें दुर्गति में ढकेल देते हैं। सुननेमें कुछ ऐसा लग रहा होगा कि यह तो कुछ भगवानके लायक बात नहीं है कि जो स्तुति करें उनको तो अनुपम सुख दें और जो भगवानके प्रतिकूल चलें उन्हें दुर्गतिमें ढकेल देवें। अरे प्रभुको किसीसे रागद्वेष तो नहीं है तब फिर वे किसीको अनुपम सुख कैसे दे सकते और किसी पर क्रुद्ध कैसे हो सकते? अरे जो भगवानकी भक्ति करता है उसके स्वयं ही पुण्यकर्मका बन्ध होता है जिससे उसे सुखसाधन प्राप्त होते हैं और जो भगवानकी भक्तिसे विमुख रहता है उसके पापकर्मका ऐसा उदय आता है कि जिससे दुर्गतिका पात्र बनता है। कहीं भगवान किसीको सुखी करें और किसी को दुर्गतिमें पटकें, ऐसी बात नहीं होती।

हे प्रभो! आपका भक्त सुख पाता है, निन्दक दुर्गति में जाता है ऐसा होता है, लेकिन हे प्रभो! ऐसा होनेके कारण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आपके परमेष्ठीपनमें कुछ भी विरोध नहीं आता, क्योंकि आप न तो किसीपर क्रोध करते हैं और न आप किसीकी भक्तिसे खुश होते हैं। आप तो माध्यम प्रकृतिका आश्रय करते हैं। राग द्वेषसे दूर रहकर आप तटस्थ रहा करते हैं। इससे इन बातोंपर प्रकाश पड़ता है कि भगवान तो स्वयं अपने स्वरूपमें व्यवस्थित वीतराग अपने शुद्ध ज्ञाताद्रष्टा रहते हैं, इससे आगे उनकी चेष्टा नहीं, उनका प्रयोजन नहीं, लेकिन जो भक्त जन उस स्वरूपकी आराधना करते हैं, वे स्वय अलौकिक सुख पा लेते हैं, और जो लोग भगवानके प्रतिकूल चलते हैं वे प्रभु-स्वरूपकी निन्दा करते हैं, प्रभुस्वरूपको समझते ही नहीं हैं, वे लोग अपने आप ही दुर्गतियोंमें पहुंच जाते हैं। भगवान तो अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तआनन्द, अनन्तशक्तिसे सम्पन्न हैं। उनका अपने आपमें शुद्ध परिणमन करना, आनंदका अनुभव करना इसके अतिरिक्त वहाँ और कुछ नहीं है।

परिक्षपितकर्मणस्तव च जातु रागादयो
न चेन्द्रियविवृत्तयो न च मनस्कृता व्यावृत्तिः।
तथाऽपि सकलं जगद्युगपदंजसा वेत्सि व
प्रपश्यसि च केवलाभ्युदितदिव्यसच्चक्षुषा ॥ ९ ॥

(३९) प्रक्षीणकर्मा, वीतराग, अतीन्द्रिय, अनिन्द्रियातीत प्रभुके दिव्य केवलज्ञानकी संस्तुति—

प्रभुस्तवनमें आचार्यदेव कहते हैं कि हे प्रभो! कैसे

हैं आप कि आपने समस्त कर्मोंका नाश किया है। तो जिसने सब कर्मोंका अथवा घातिया कर्मोंका नाश कर दिया है, ऐसे हे जिनेन्द्रदेव! तुम्हारे कभी रागादिक भाव तो नहीं होते। और इन्द्रियका व्यापार होता नहीं और मनका भी व्यापार होता नहीं, इतनेपर भी आप सारे जगतको, सारी दुनियाको स्पष्ट जान लेते हो। अपने केवल दिव्य ज्ञानके द्वारा सर्व विश्व को जान जाते हो। सुननेमें एक बात अचरज जैसी लग रही कि राग नहीं, इन्द्रियका काम नहीं, मनकी प्रवृत्ति नहीं और फिर भी इतना बड़ा ज्ञान कर लेते हैं। यहां देखो—हम आप लोग जो कुछ भी ज्ञान करते हैं उसमें ये तीन मददगार बनते हैं। किसी चीजमें राग हो तब उसकी जानकारीमें लगते हैं। जहाँ राग नहीं है वहाँसे उपेक्षा कर देते हैं—क्या करना? छोडो, क्या समझना? और जहाँ-जहाँ राग लग रहा वहाँ खूब बड़े समझदार बनते हैं। और जब हमारी इन्द्रियाँ काम करें, इन्द्रियोंका हमारा व्यापार चलता है तो उस इन्द्रियव्यापारसे हम सब कुछ जान जाते हैं यहाँकी बातें, और मन भी काम करता है। तब हमारी समझ बनती है, लेकिन प्रभुके ऐसा केवलज्ञान प्रकट हुआ है जिसके कारण रागादिक नहीं हैं, इन्द्रियका व्यापार नहीं है, मनकी प्रवृत्ति नहीं है, फिर भी वे सारे विश्वको एक साथ स्पष्ट जान जाते हैं। यह सब अपनी अन्तर्दृष्टि करके समझमें आयगा। जितने भी जो काम

Report any errors at vikasnd@gmail.com

हैं वे इन्द्रियाँ नहीं करतीं, किन्तु आत्माका ज्ञान ही जानना है। और रागके कारण नहीं जानता आत्मा, किन्तु ज्ञानके कारण जानता है। रागको भी जान लेता है तो वह रागके कारण नहीं, किन्तु अपने ज्ञानस्वभावके कारण जानता है। तो जाननेका जो स्वभाव है वह उनके पूर्ण प्रकट हो गया है, उसमें क्या इन्द्रियकी जरूरत, क्या मनकी प्रवृत्तिकी जरूरत और क्या अन्य सहकारी भावोंकी जरूरत ? एक क्षण प्रतिक्षण सम्पूर्ण विश्वको एक साथ स्पष्ट जान जाते हैं। तो इस स्तवनमें भगवानके ज्ञानस्वरूपकी महिमा गायी गई है कि प्रभुके ऐसी दिव्य अलौकिक केवलज्ञान प्रकट हुआ है। हे प्रभो ! आपका जो ज्ञानस्वभाव अन्तःप्रकाशमान है वह पूर्ण प्रकट हो गया है, इसलिए आप प्रभु कहलाते हैं।

क्षयाच्चरतिरागमोहभयकारिणां कर्मणां
कषायरिपुनिर्जयः सकलतत्त्वविद्योदयः।
अनन्यसदृशं सुखं त्रिभुवनाधिपत्यं च ते सुनि-
श्चितमिदं विभो ! सुमुनिसम्प्रदायादिभिः ॥१०॥

(४०) प्रभुके कषायरिपुनिर्जय, सकलतत्त्वविद्योदय व अनुपम सुखका संस्तवन—

आपके रति, राग, मोह, भय उत्पन्न करने वाले कर्मों का क्षय हो गया है। चार घातियाकर्म भी नष्ट हो गए हैं, प्रभु जिनेन्द्रके यहाँ वहाँ मोहकी कोई बात उत्पन्न नहीं होती। तो कर्मोंका क्षय हो जानेसे कषाय बैरियोंपर आपने विजय प्राप्त की। अब न राग हो रहा, न मोह है, न भय है, इस कारण जब कर्मोंका यहाँ सद्भाव न रहा तो क्रोध, मान, माया, लोभ भी नहीं है। साथ ही साथ समस्त तत्त्वोंको जानने वाले केवलज्ञानका उदय भी होता है। आप बड़ेकी कोई पहिचान तो बताओ जरा। बड़ेकी पहिचान आप दो बातों से करेंगे—(१) दोष न हों, (२) गुण हों। तो भगवान बड़े हैं, क्यों बड़े हैं, क्योंकि उनमें दोष रंच भी नहीं हैं और गुण पूरे हो गए। दोष क्या हैं ? क्रोध, मान, माया, लोभ, विषय-कषाय आदिक ये दोष अब जरा भी नहीं रहे, और गुण क्या है ? ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शक्ति ये पूर्ण प्रकट हो गए हैं।

तो यह बात यहाँ बतला रहे हैं कि कषाय बैरियोंपर तो आपने विजय प्राप्त की और समस्त तत्त्वोंके जाननहार विद्याका उदय हुआ। तीसरी बात कह रहे हैं कि आपके ऐसा सुख प्रकट हुआ है जो अन्यके सदृश नहीं, किन्तु अलौकिक है। आपके आनन्दकी उपमा यहाँ संसारके किसी पुरुषसे नहीं दी जा सकती है। जब कल्पना गई, विकल्प दूर हुए, ज्ञानमें ज्ञानका प्रकाश आ गया वहाँ ऐसा अद्भुत आनन्द होता है कि जिस आनन्दकी तुलना किसी भी सुखसे नहीं की जा सकती है। कल्पना करो कि जगतके जितने भी बड़े लोग

http://www.jainkosh.org
Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं, तीनों लोकके इन्द्रोंका, चक्रवर्ती, राजा-महाराजाओंका सभीका सुख इकट्ठा कर लो, तीनों कालोंमें जितने भी ये महापुरुष हों उन सबका सुख जोड़ लो, फिर भी आत्मीय आनंद से उसकी तुलना नहीं हो सकती। उसकी जाति ही अलग है, पराधीन है, वैषयिक है, विनाशीक है, और आत्मीय आनन्द स्वाधीन है, स्वसे उत्पन्न हुआ, अविनाशी है। उस आनन्दकी उपमा संसारके सारे सुखोंको भी इकट्ठा कर लो तो भी नहीं हो सकती है।

(४१) प्रभुके त्रिभुवनाधिपत्यका स्तवन—

चौथी बात सुनो कि आप तीन लोकके अधिपति हैं। प्रभुसे बड़ा कौन? आज तो प्रभुकी महिमा घट रही है तो प्रभुमें नहीं घट रही है, किन्तु लोगोंमें घट रही है। प्रभु तो ज्योंके त्यों हैं, अनन्तआनन्द सम्पन्न हैं और जिस कालमें प्रभु विराजमान रहते हों उस कालमें उनका प्रभाव अलौकिक होता है। १०० योजन तक दुर्भिक्ष नहीं पडता जहाँ प्रभु विराजे हों। १०० योजनका अर्थ हुआ करीब ४०० कोश और ४०० कोशके मायने करीब ११०० मील। तो ११०० मील तक दुर्भिक्ष नहीं रहता, सुभिक्ष रहता है और जब ये प्रभु विराजमान थे उस समय इन्द्र स्वर्गोंसे आते थे, सेवा करते थे, तो उनकी महिमा तो कितनी ही बढ़ी-चढ़ी थी। आज उसका तिरस्कार हो रहा है। कोई प्रभुकी भक्त नहीं

चाहता, कोई समझता ही नहीं, और विपरीत बातें किया करते हैं। तो प्रभुमें जो प्रभुता है निर्दोषता और गुणविकास जो प्रभुमें आया है उससे वे तीनों लोकके मालिक हैं।

हे प्रभो! बड़े बड़े मुनियोंके समुदायमें मुनिकुलोंने यह बात वर्णन की है कि आप कषाय बैरोंके विजीय हुए हैं, आपमें समस्त तत्त्वोंके ज्ञानका उदय हुआ है, आपका आनन्द अलग है और तीन लोकके बड़े अधिपति हैं। इस छन्दमें ४ बातोंपर प्रकाश डाला है। चौथी बात बतायी है कि हे प्रभो! आप तीनों लोकके अधिपति हैं, यह तो फलित अर्थ है, उसकी वाञ्छा तो न करें, लेकिन तीन बातें तो देखिये— कषायोंपर विजय करना यह हम आप लोगोंके लिए कर्तव्य है कि हम कषायोंपर विजय करें। चार आदमी बैठे हैं, किसीको अट्ट सट्ट बक दिया तब भी रोषमें न आये, ऐसा अपने आप पर कन्ट्रोल बनायें, तत्त्वज्ञानका प्रकाश बनायें, घमंड न आ सके, छल-कपटकी बात न आये, तृष्णा घर न जमा सके, ऐसी कषाय बैरियोंपर विजय करना है। दूसरी बात यह बतायी है कि शुद्ध तत्त्वज्ञानका उदय हो गया। वहाँ समस्त विश्वका जाननहार ज्ञान हो तो इतना तो कीजिए कि इस जाति का वह केवलज्ञान है क्या? जैसा स्वरूप है वैसा जान रहे तो यहां भी तुम प्रयोजनभूत वस्तुस्वरूपको सही जानो। प्रभु का आनन्द अलौकिक है तो हमें भी अलौकिक आनन्दकी दृष्टि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

बनानी होगी। प्रभुभक्तिसे हमारा प्रयोजन बनता है उस सब पर निरीक्षण करते जाइये। हे प्रभो ! आपका बड़े मुनिकुलोंने इस प्रकार स्तवन किया है।

न हीन्द्रियधिया विरोधि न च लिंगबुद्धया वचो
न चाप्यनुमतेन ते सुनयसप्तधा योजितम्।
व्यपेतपरिशङ्कनं वितथकारणादर्शना दतोऽपि
भगवंस्त्वमेव परमेष्ठितायाः पदम्॥ ११॥

(४२) सकलपरमात्माको परमेष्ठिताके पदका आख्यान—

सकलपरमात्मा जिनेन्द्रदेवके स्तवनमें आचार्यदेव कहते हैं कि हे नाथ ! परमेष्ठीपनेका पद तो आपके ही संगत है, क्योंकि आपका वचन सयुक्त संगत अविरुद्ध है। आपके उपदेश में कहीं भी मिथ्यापन नहीं है। आपका वचन, आपका जैन शासन न तो इन्द्रियप्रत्यक्षसे विरुद्ध होता है। जैसे कोई कहे कि अग्नि तो ठंडी होती है और उसमें कोई युक्ति भी देवे, क्योंकि वह चीज है। जो चीज होती है वह ठंडी होती है, जैसे पानी। पानी भी एक चीज है और ठंडा भी है। अग्नि भी एक चीज है, इसलिए ठंडा ही होना चाहिये। युक्ति भी कोई लगा दे तो भी समझायेसे अगर न माने तो चिमटेसे उठाकर उसकी गदेलीपर अग्निका टुकड़ा धर दो, बस पता पड़ जायगा कि अग्नि ठंडी होती है या गर्म। तो जिस बातमें प्रत्यक्षसे विरोध आये वह बात संगत नहीं बनती। भगवानके

http://www.jainkosh.org

वचनोंमें इन्द्रियप्रत्यक्षसे भी कोई विरोध नहीं आता। इस इन्द्रियप्रत्यक्षसे कोई जिसे ज्ञात न हो, यह बात अलग है, पर विरोध आता है कि जंचे और भाँति। जैसे परमाणु, ये इन्द्रियप्रत्यक्षके विषय ही नहीं, विरोध क्या आयगा ? तो आपका जो वचन है उस वचनमें इन्द्रियप्रत्यक्षसे कोई विरोध नहीं आता। अनुमानसे भी विरोध नहीं आता और भली प्रकार सप्तनयभङ्गीसे सुशोभित है। जैनशासन सब एक स्याद्वादपर आधारित है। स्याद्वाद बिना जैनशासनका कोई प्राण न कहलायगा।

(४३) सकलपरमात्माकी परमेष्ठिताका उदाहरणपूर्वक स्पष्टीकरण—

जैसे किसी व्यापारीका एक ट्रेडमार्क होता है इसी तरह जैनधर्मके उपदेशकी क्या मुद्रा है ? उसका मार्क है स्याद्वाद। अगर नयपरीक्षासे करके बात बतायी हो तब तो सही है और सर्वथा एकान्त करके कही हो तो ठीक नहीं। जैसे जीव नित्य है, अपेक्षासे कहना तो ठीक है और अगर इसका एकान्त करें कि जीव तो नित्य ही है, उसमें कुछ भी परिणमन नहीं होता तो वह स्याद्वादकी मुद्रासे बाहरकी बात हो गई। तो स्याद्वादसे भी आपका वचन सुशोभित है और उसमें किसी प्रकारकी शंका नहीं है। जो मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत ७ तत्त्व बताये गए हैं उनका निर्णय कर लो,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उनमें शंका न रहना चाहिए। वैसे तो दुनियामें बहुतसी चीजें हैं, नहीं ज्ञान हो रहा न सही। ज्योतिष, वैद्यक, संस्कृत आदिका ऊँचा ज्ञान नहीं मिला है तो न सही, लेकिन जीव, अजीव, आस्रव, बंध, सम्वरा, निर्जरा और मोक्ष इन ७ तत्त्वों के सम्बंधमें ठीक निर्णय होना कोई कठिन नहीं है।

(४४) प्रभुके उपदेशमें रंचमात्र भी शंकाका अभाव—

हे प्रभो, आपके उपदेशमें किसी प्रकारकी शंका नहीं है, क्यों शंका नहीं कि झूठ बोलनेका कोई कारण ही नहीं लगा हुआ है। प्रभुके वचनोंमें असत्यता आनेका कोई कारण ही नहीं रहा। असत्यता आनेके कारण हैं रागद्वेष। जिस पुरुषमें किसी किस्मका रागद्वेष होगा उसके वचन असत्य निकलेंगे, पर प्रभु तो वीतराग हैं और बिना चाहे उनकी दिव्यध्वनि खिरती है। उसमें जो गणधरदेव जानते हैं वह सब सत्य है। तो झूठ बोलनेका कारण न देखा जानेसे उसमें कोई शंका और सदेह की बात नहीं है। इस कारण हे भगवन ! तुम ही परमेष्ठीपनेके लायक हो।

(४५) परीक्षित परमेष्ठिता—

देखो एक तो होती है अज्ञानभक्ति, अंधभक्ति और एक होती है परीक्षा की जानेपर भक्ति। जिनेन्द्रदेव पूज्य हैं, वंदनीय हैं। कुल क्रमसे चले आये हैं, बाप दादा करते आये हैं, हमारा भी यही काम है; इस तरह की परम्परा भक्तिमें

या अज्ञानभक्तिमें कहीं धर्मका मार्ग नहीं मिल गया। परीक्षा किए जानेपर ये प्रभु वन्दनीय हैं, इस कारण कि प्रभु वीतराग हैं और सर्वज्ञ हैं। कोई भी पुरुष बड़ा तब कहलाता है जब उसमें गुण तो पूरे विकसित हो गए हों और समस्त रागद्वेषादिक विकार दूर हो गए हों। तो सब आत्माओंमें ये प्रभु जिनेन्द्रदेव दोषरहित हैं और गुण पूर्ण प्रकट हैं, इसीलिए बड़े हैं। अब पूर्व समयमें जो विश्वके कल्याणकी भावना की थी उसके दर्शनविशुद्धि भावनामें जो सर्व जगतके जीवोंके कल्याण के भाव हुए थे। उससे एक ऐसा धर्मविशेष प्रकट होता है कि जिसे तीर्थंकरप्रकृतिका उदय कहते हैं। उनकी वाणी बिना चाहे खिरती है तो ऐसे भगवानकी उस दिव्यध्वनिकी परम्परा से आज ये सब शास्त्र चले आ रहे हैं और इसी कारण इनमें कोई सन्देहकी बात नहीं रही। लोग भी कहते हैं कि चार चीजें होती हैं—वेद, श्रुति, स्मृति और पुराण। ये चार प्रकारके ज्ञानके मार्ग हैं। उनका अर्थ चाहे कोई कुछ करे, पर निरुक्तिसे और युक्तिसे यदि विचारा जाय तो क्या अर्थ बनता है, सो सुनो।

(४६) वेदका क्या अर्थ—

वेदके मायने केवलज्ञान। जो जाने सो वेद। विद् धातु जानने अर्थमें है। जैसे कहा कि यह तत्त्ववेत्ता है, तत्त्ववेदी है। तो विद धातुका अर्थ होता है जानन। तो जो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सम्पूर्ण ज्ञान है उसका नाम वेद है। वेदका अर्थ हुआ केवलज्ञान। श्रुतिका अर्थ है वेदसे श्रुति निकली, श्रुति मायने दिव्यध्वनि। जो सुननेमें आयी। श्रुति भी कहते, दिव्यध्वनि भी कहते। केवलज्ञानी परमात्मा जिनेन्द्रसे जो दिव्यध्वनि खिरी है वह है श्रुति। वेदसे निकली श्रुति और दिव्यध्वनि सुनकर गणधर आचार्योंने उसका स्मरण किया, समझा, तो गणधर देवने जो समझा उसकी समझका नाम है स्मृति और उसके बाद जो ग्रन्थरचना हुई उसका नाम है पुराण। पहिले समय में लोग कहा करते थे कि जब पुराण बँचने लगा, चलो मन्दिर जी। प्रत्येक शास्त्रका नाम पुराण था। पुराणपुरुषोंके द्वारा जो रचे हुए हैं उनका नाम है पुराण। यों वेद, शास्त्र, स्मृति, पुराण ये चार हैं। इससे पुराणोंमें जो उपदेश पाया जाता है उसमें कोई सन्देह नहीं। तो हे प्रभो! आपके वचन चूँकि निर्दोष हैं इसलिए परमात्मत्व पदके योग्य आप ही हैं।

न लुब्ध इति गम्यसे सकलसङ्गसंन्यासतो।
न चाऽपि तव मूढता विगतदोषवाग्यद्भवान्॥
अनेकविधरक्षणदसुमृतां न च द्वेषिता।
निरायुधतयाऽपि च व्यपगतं तथा ते भयम्॥१२॥

(४७) प्रभुके लुब्धता व मूढताका अभाव—

यह जिनेन्द्रदेवकी स्तुति हो रही है। आचार्यदेव कहते हैं कि हे भगवन! आपके समस्त परिग्रहोंका त्याग हो

http://www.jainkosh.org

गया। सकल संगोंका संन्यास हो गया, केवल एक पवित्र गात्र रह गया। इससे सिद्ध होता है कि आप लुब्ध नहीं हैं। लुब्ध कौन? जो धन, मकान, वस्त्र, कुटुम्ब आदिक रखे सो लुब्ध। अगर किसी आदमीको लुब्ध कह दिया जाय तो वह बुरा मानता है, लेकिन प्रायः सभी लोग लुब्ध ही तो हैं। जिसे परवस्तुमें राग हो सो लुब्ध। बताओ कौन है ऐसा जिसे परवस्तुओंमें राग न हो? पर लुब्ध कहनेपर बुरा मानते हैं। अरे लुब्ध शब्द सुनकर तो यह समझना चाहिए कि ठीक ही कह रहे हैं। मेरेमें अभी लोभकषाय है, नष्ट नहीं हुई। लोभ कषाय तो १० वें गुणस्थानके अन्तमें खतम होगी। तब फिर लुब्ध शब्द सुनकर बुरा क्या मानना? अथवा और देखो—जैसे यहाँ किसीको कह दिया जाय कि साहब आप तो बड़े मूढ़ हैं तो वह तो मूढ़ शब्द सुनकर बुरा मान जायगा, पर मूढ़ शब्दका अर्थ है मोही।

(४८) मूढ़ व मोहीका एक ही रूप—

भला बताओ कौन है ऐसा जो मोही नहीं? अगर कहा जाय कि आप तो मोही हैं तो इस बातको सुनकर कोई उतना बुरा नहीं मानता, बल्कि बहुतसे लोग तो मोही शब्द सुनकर खुश होते हैं। वे जानते कि इसमें मेरी प्रशंसा की जा रही है कि देखो यह कितना अच्छा काम चला रहा है, कुटुम्बका कितना अच्छा भरण पोषण कर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रहा है, परिवारके लोगोंका कितना अधिक ख्याल रखना है तो मोही शब्द सुनकर किसीको उतना बुरा नहीं लगता, पर मूढ़ शब्द सुनकर लोगोंको बुरा लग जाता है। अरे भाई मूढ़ का अर्थ है मोही, फिर मूढ़ शब्द सुनकर बुरा क्यों मानते ? लोग तो अपनी निन्दाकी बात सुनकर रोष करने लगते हैं। बिरला ही विवेकी ऐसा होगा जो निन्दा और प्रशंसा दोनोंमें समताकी दृष्टिसे देखता हो। यहाँ प्रभुकी स्तुतिमें कह रहे हैं कि हे भगवन ! आप लुब्ध नहीं हैं, यह बात अच्छी तरह जान रहे हैं, कारण कि आप सकल परिग्रह संगसे दूर हैं और आपके मूढ़ता नहीं है। कैसे समझा कि भगवानमें मूढ़ता नहीं है ? उनके वचन जितने भी हैं वे निर्दोष हैं। सभीकी पहिचान वचनोंसे होती है। यह आदमी भला है, यह बुरा है, यह क्रूर है, यह दयालु है, यह वचनोंसे परीक्षा हो जाती है और वचनोंको कोई बनाकर भी निकाले तो भले ही कोई नया आदमी धोखेमें आ जाय, मगर रोज साथमें रहने वालों को तो उससे धोखा नहीं हो सकता। वचन एक ऐसी चीज है जिससे मनुष्यकी सब आदत आचार विचार परख लिए जाते हैं।

(४६) वचनोंसे वक्ताके गुण अवगुणकी परीक्षा—

एक बारकी घटना है कि कोई एक राजा, मंत्री और सिपाही ये तीनों ही एक जंगलमें से किसी प्रोग्राममें जा रहे थे। कुछ दूर जाकर ये तीनों बिछुड़ गए। सिपाही आगे निकल गया, किसी दूसरे रास्तेसे मंत्री उसके पीछे रहा और राजा सबसे पीछे रहा। होते-होते सड़कसे क्रमसे तीनों व्यक्ति पार होते हैं। उस सड़कपर बैठा हुआ था एक अन्धा पुरुष। तो सबसे पहिले सिपाही जब निकला तो सिपाहीने पूछा अंधे से कि अबे अंधे इधरसे मंत्री निकला कि नहीं ? तो वह अंधा बोला—अरे सिपाही जी, इधरसे तो मंत्री नहीं निकला। खैर सिपाही आगे बढ़ गया। बादमें निकला मंत्री, उसने भी अंधेसे पूछा—इधरसे राजा तो नहीं निकला, तो अन्धा बोला—मंत्री जी, इधरसे तो नहीं निकला। बादमें राजा उधरसे निकला, अंधेसे पूछा—कहो भाई इधरसे दो व्यक्तियोंके जाने की आवाज तो नहीं आयी। तो अंधा बोला—राजन् ! इधर से दो व्यक्ति गए तो हैं। आगे चलकर तीनों व्यक्ति इकट्ठे हुए। तीनोंने अपनी-अपनी बात बतायी कि रास्तेमें एक अंधा पुरुष मिला, उसे कुछ सूझता भी न था, वस्त्राभूषण वगैरा भी नहीं देख सकता था, पर उसने कहा, सिपाही जी, मंत्री जी और राजा जी, तो वह कैसे जान गया, इसकी जानकारी उसके पास चलकर करनी चाहिए। तीनों व्यक्ति अंधेके पास गए और पूछा कि आप बिना बताये, देखे कैसे जान गए कि यह सिपाही है, यह मंत्री है और यह राजा है ? तो उस अंधे ने बताया कि मैंने उनके वचनोंसे उनकी परीक्षा की।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

तो इससे शिक्षा यह लेनी चाहिए कि इस इन्सानकी परीक्षा उसके वचनोंसे होती है। अरे भाई इन वचनोंके बोलनेमें दरिद्रता क्यों की जाय ? शुद्ध साफ प्रिय हितकारी वचन बोलनेकी अपनी प्रवृत्ति होनी चाहिए। यह भी एक तपश्चरण है। किसीकी प्रतिकूल प्रवृत्तिसे मेरेको कोई कषाय जग भी जाय तो भी अपने मनको ऐसा संयत रखें कि हमारे वचन कषायसूचक, कषायभरे न निकलें। नहीं है इतनी सामर्थ्य तो हम मौन हो जावें, कुछ समय बाद बोल लेना। यदि गुस्साभरी हालतमें गुस्साभरे शब्द निकल जायें तो सुनने वाला सहन न करेगा। वह उल्टा बोलता है, लो बढ़ गई बात। तो यह भी एक गृहस्थकी या हर एककी तपस्या है कि वचन हित, मित, प्रिय निकला करें। तो वचनोंसे मनुष्यकी प्रकृति जानी जाती है, और ये भगवान जिनेन्द्रके जो वचन (उपदेश) प्राप्त हुए हैं वहाँ यह भाव आ जाता है कि प्रभुके मोह, अज्ञानता, मूढ़ता रंचमात्र भी नहीं है, विशुद्ध ज्ञानी हैं।

(५०) प्रभुमें मूढ़ताके अभावका उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण—

एक बार किसी ग्राममें एक पंडितने कथा सुनायी कि एक पुरुष हरिद्वारकी यात्रामें अकेला हो गया हुआ था। वह वहाँ बीमार हो गया, कै दस्त लगने लगे। तो वहाँ एक झोंपड़ी थी, उसमें बुढ़िया रहती थी। तो बुढ़ियाको उस पुरुषपर दया आयी और बोली कि बेटा! हम तुमको प्रति

दिन सपथ्य भोजन दे दिया करेंगी, जब तुम ठीक हो जाओगे तब चले जाना, अभी यहीं दो-चार दिन रह लो।''''अच्छी बात है। रहने लगा। उस पुरुषको अपने वचनोंपर संयम न था, जब चाहे निष्ठुर वचन बोल दिया करता था। खैर जब वह वहाँ रहने लगा तो बुढ़िया उसके लिए उसके योग्य भोजन तथा ओषधि दे दिया करती थी। एक दिन वह पुरुष बोल उठा कि बुढ़िया माँ तुम यहाँ अकेली रहती हो, तुमको गुजारा चलानेके लिए पैसा कहांसे मिलता है ? तो उसने बताया कि मेरा पति अफसर है, वह १००) रु० महीना मेरे लिए भेज दिया करता है, उससे मेरा काम चलता है। दूसरे दिन फिर वह बोल उठा कि बुढ़िया माँ तुम यहाँ अकेली रहती हो, अरे विवाह करवा लो तो भला साथ रहनेके लिए दूसरा आदमी तो हो जायगा। यह बात बुढ़ियाको सहन न हुई और उसे वहांसे निकाल दिया। देखिये—वचन ही तो हैं, अरे अच्छे वचन बोलना चाहिए जिससे कि सुनने वालेको भी सुख मिले और बोलने वालेको भी। निष्ठुर वचन बोलनेसे तो खुदका भी बिगाड़ होता और दूसरोंको भी दुःख होता। घरों में प्रायः जो सास बहूमें, देवरानी जेठानीमें या पास-पड़ौसमें जितने भी कलह मचा करते हैं वे सब निष्ठुर वचन बोलनेके कारण ही तो मचा करते हैं। तो जहां खोटे वचन निकलें, समझना चाहिए कि वहां रागद्वेष भरा है। और भगवानमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रागद्वेष है नहीं, इसलिए प्रभुके निर्दोष वचन निकलते हैं। उनके वचनोंमें मूढ़ता नहीं समायी हुई है। इसलिए हे भगवन्! आप लुब्ध नहीं हैं, आपमें मूढ़ता नहीं है।

(५१) प्रभुके द्वेष और भयका अभाव—

हे प्रभो! आपमें द्वेष भी नहीं है। आपका कैसा वैराग्य है कि आपको किसीसे द्वेष नहीं है। तभी तो आपने अनेक पुरुषोंको अनेक प्रकारसे प्राणिरक्षाके उपाय बताये हैं। देखो—व्रतोंमें बताया है कि बड़े ही यत्नसे, बड़ी सावधानीसे रसोई बनाओ, जल छानो, बहुघात त्रसघात प्रमादकारक आदि पदार्थ न तो देखो—व्रतीपर भी दया हुई, उसकी भी रक्षा रही, एकेन्द्रिय आदिककी भी रक्षा रही। तो सब प्राणियोंकी रक्षाके वचन निकलते हैं आपके, इससे जाना जाता कि आपको किसीसे द्वेष नहीं है। प्रभुकी मुद्रा देखो तो वहां ये सब बातें झलक रही हैं।

हे नाथ! आपके किसी प्रकारका भय नहीं है। कैसे समझा जाय कि भय नहीं है? शस्त्रहीन हैं आप। आप कोई शस्त्र नहीं रखते, इससे मालूम होता है कि आप निर्भय हैं। अरे जिसे भय होगा वही हथियार रखेगा। प्रभुके पास त्रिशूल चिमटा आदिक कोई शस्त्र नहीं हैं, इसलिए मालूम होता है कि प्रभु भयरहित हैं। ऐसी यह वीतराग मुद्रा यह बतलाती है कि परमेष्ठीका पद तो आपके ही संगत होता है। मूर्तिकी

मुद्रा देखो तो उससे हमें कितनी शिक्षा मिलती है? पैरपर पैर धरकर बैठे हैं जिसे पद्मासन कहते हैं। प्रभुकी यह मुद्रा यह उपदेश देती है कि दुनियामें कोई स्थान जाने योग्य नहीं है। कहाँ सार रखा है, जाना बन्द करो। हाथपर हाथ रखो, इस जगतमें कोई काम करने लायक नहीं है जो आत्माका हित कर सके। जगतमें कोई भी वस्तु देखे जाने लायक नहीं है जो आत्माका हित कर सके, इसलिए इन नेत्रोंसे भी यत्र-तत्र न देखो, नासाग्र ध्यानसे बैठो। ऐसी प्रभुकी मुद्राके दर्शन करनेसे यह शिक्षा मिलती है, आत्माकी भी सुध होती है कि ऐसा ही मैं आत्मा हूं, निर्भय हूं, वीतराग हूं, अमूर्त हूं, अविकार हूं। तो जिस दर्शनमें आत्माकी सुध हो वह दर्शन सम्यग्दर्शन है।

यदि त्वमपि भाषसे वितथमेवमाप्तोऽपि सन्
परेषु जिन का कथा प्रकृतिलुब्धमुग्धादिषु।
न चाऽप्यकृतकात्मिका वचनसंहति र्दृश्यते
पुनर्जननमप्यहो! न हि विरुध्यते युक्तिभिः ॥१३॥

(५२) प्रभुके वचनोंमें असत्यताकी असंभवता—

हे नाथ! आप आप्त हैं, पहुंचे हुए हैं, सर्वज्ञ हैं, निर्दोष हैं। यदि आप ही असत्य सम्भाषण करने लगें तो फिर अन्य संसारी जीवोंका तो कहना ही क्या है, क्योंकि अन्य जीव तो प्रकृत्या ही लुब्ध हैं, मुग्ध हैं। तो जो लुब्ध नहीं, मुग्ध नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ऐसा परमात्मा भी यदि असत्य वचन बोले तब तो फिर अन्य लोगोंकी तो बात ही क्या रहेगी ? हे प्रभो ! आप आप्त हैं, इसलिए आपके वचन असत्य नहीं होते। देखो जैनशासनके ग्रंथोंमें बच्चोंकी पुस्तकोंसे लेकर विद्वानोंकी पुस्तकों तक सिद्धान्तमें कहीं विरोध नहीं आता कि इसमें तो यों कहा और यहां यों कहा। यदि कुछ विरोध जंचता है तो उसकी विधि न जाननेसे जंचता है। एक बार आचार्य समन्तभद्रने भगवानकी परीक्षा करनेके बाद जब यह विचार किया कि यहां मेरे नमस्कार किए जाने योग्य कौन है तो उस परीक्षामें आप्तमीमांसा ग्रथकी रचना कर डाली। जब ग्रंथका स्तवन करने बैठे तो स्तवन करते हुएमें भगवानके प्रभावकी बात कहना हुआ तो कहा कि हे नाथ ! आपके गुणोंका वर्णन कोई नहीं कर सकता। यदि कुछ कह सकता हूं तो बस यही कि आपमें ज्ञान और आनन्दकी कोई सीमा नहीं है। थोड़ेसे शब्दोंमें सब वर्णन कर लिया। फिर मानो प्रभुकी ओरसे यह प्रश्न होता है कि जब इतना महान् स्वरूप है और इतना पवित्र एक उपाय है संसारके संकटोंसे छूटनेका तो इस जैन-शासनकी महिमा सब जगह क्यों नहीं फैलती ? तो उन्होंने कहा कि नाथ ! इसमें तीन कारण हैं—एक तो कलिकाल, दूसरा श्रोताओंका हृदय कलुषित होता, और तीसरा वक्ताओं को नयका ज्ञान न होना। इन तीन त्रुटियोंके कारण

http://www.jainkosh.org

आप के पवित्र जैनशासनकी महिमा सब जगह नहीं फैलती।

(५३) पवित्र हितमय प्रभुशासनका लोकमें एकाधिपत्य न हो सकनेके कारणपर विचार—

कलिकालके विषयमें यह कहावत चलती है कि मानो कलसे (आजके अगले दिनसे) कलिकाल लगेगा और मानो आज हो किसी मनुष्यने अपना घर बनवानेके लिए किसीसे जमीन खरीदी और उसने नींव डालनेके लिए जमीन खोदी तो उसमें अशर्फियोंसे भरा हुआ हंडा मिला। अब जिसने जगह खरीदी उसका आज ही ऐसा विचार हुआ कि देखो मैंने तो सिर्फ जमीन खरीदी है, यह अशर्फियोंका हंडा तो उसे मिलना चाहिए जिसकी जमीन है। सो वह जमीन बेचने वालेके पास गया और कहा कि यह लीजिये अशर्फियोंका हंडा इसपर मेरा अधिकार नहीं, मैंने तो आपसे सिर्फ जमीन खरीदी है। तो वह बेचने वाला कितना अच्छा उत्तर देता है कि मैं इसे क्यों लूँ ? यह तो जमीन बेच देनेके बादमें आपने पाया है, इसपर तो अब आपका अधिकार है, मेरा नहीं। सो वे दोनों इस बातके लिए झगड़ गए कि इसे तो हम न रखेंगे, आप रखें। आखिर वे दोनों राजाके पास गए। राजाको देने लगे। तो राजा भी बोला कि इसे तो तुम ही रखो, हम न

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रखेंगे। राजा भी उसे लेनेसे इन्कार कर देता है। और यह कह देता है कि अच्छा इसका फैसला कल होगा। आप लोग सोचते होंगे कि यदि मैं होता उनको जगहपर तो उसे मैं ही ले लेता—(हँसी)।

अब देखिये—कलका दिन (आगे आने वाला दूसरा दिन) कलियुगका आता है तो अर्द्धरात्रिके बाद ही उन तीनों व्यक्तियोंके विचार एकदम बदल गए। जमीन खरीदने वाला सोचता है कि मैं कितना बेवकूफ हूं? अरे मैंने अपनी खरीदी हुई जमीनमें धन पाया तो इसपर तो मेरा अधिकार है। बेचने वाला सोचता है कि मैंने तो सिर्फ जमीन बेची, न कि धन। अतः इसपर मेरा अधिकार है। राजा सोचता है कि यह तो जमीनके अन्दरका निकला हुआ धन है, इसपर तो मेरा अधिकार है। मैं कैसी मूर्खताका काम कर रहा था कि उसे लेनेसे इन्कार कर दिया था। अब देखिये कलिकाल आते ही लोगोंके विचारोंमें कितना परिवर्तन हो गया, तो ऐसा है कलिकाल। तो एक तो ऐसे इस कलिकालके होनेसे हे प्रभो! आपका पवित्र जैनशासन सर्वत्र व्याप न सका। दूसरे श्रोतावों का अभिप्राय कलुषित है, और तीसरे वक्ताओंको नयका ज्ञान नहीं है। तो कहते हैं कि प्रभुका ऐसा उत्तम शासन है और वचन जो निकले वे दिव्यध्वनिसे निकले और आपका फिर

जन्म नहीं होता, ये सब बातें प्रभु आपको संगत हैं, इनमें किसी प्रकारका विरोध नहीं होता। तो यों प्रभुके अन्तः बाह्य स्वरूपपर दृष्टि जाना यह है प्रभुदर्शन और उससे अपने स्वरूपका परिचय पाना यह है देवदर्शनका उद्देश्य।

> सजन्ममरणर्षिगोत्रचरणादिनामश्रु
> तेरनेकपदसंहतिप्रतिनियामसन्दर्शनात्।
> फलार्थिपुरुषप्रवृत्तिविनिवृत्तिहेत्वात्मानं
> श्रुतेश्च मनुसूत्रवत्पुरुषकर्तृकैव श्रुतिः ॥१४॥

(५४) प्रभुवाणीकी निर्दोषताका अन्य योगव्यवच्छेदविधिसे समर्थन—

इस स्तोत्रके बनाने वाले आचार्य समस्त वेद वेदांगोंके बड़े विद्वान् थे और थे जैनशासनके विपरीत, किन्तु कुछ सुयोगवश उनको जैनशासनमें श्रद्धा हुई, उन्होंने यह स्तवन रचा। बड़े उपयोगी वर्णन करनेके बाद इस प्रसंगमें यह बात चल रही है कि हे जिनेन्द्रदेव! तुम ही परमेष्ठिताके योग्य हो, क्योंकि तुम्हारे वचन निर्दोष हैं। जिनेन्द्रदेवकी दिव्यध्वनिसे प्रकट हुआ उपदेश निर्दोष है। तो इस विषयमें कोई यह शंका कर सकता है अथवा स्वयं आचार्यदेवने एक प्रश्न उठाते हुए कि अकृतक, अपौरुषेय, जिसे किसीने नहीं बनाया है ऐसा वेद प्रमाणभूत है, श्रुति प्रमाणभूत है, इसे किसीने नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

बनाया, और यों ही आकाशसे उतरा हुआ है, एक सिद्धान्त का यह कहना है कि वेद ही प्रमाण है और उसे किसीने बनाया नहीं, अकृत्रिम है, अनादिसे चला आया है। तो उस श्रुतिके बारेमें आचार्यदेव यह कह रहे है कि जिस श्रुतिमें जन्मका वर्णन हो, किसी व्यक्तिके मरणका वर्णन हो, किसी ऋषिका नाम लिया हो, किसीका गोत्र बताया हो, किसीके कुलका नाम लिया हो, भला बतलाओ जहाँ इतने नाम लिए गए हों वह अकृत्रिम कैसे हो सकता है ? ये पहिले हुए हों पीछे बनाये जायें तब ही तो नाम आयगा।

(५५) उपर्युक्त विषयका स्पष्टीकरण—

जैसे राम रावणका नाम पुराणोंमें आता है तो ये पुराण राम रावणसे पहिले बनाये गए क्या ? नाम जिनका आया है, जिनके गोत्रका नाम आया हो तो समझना चाहिए कि इसके बादमें बताये गए और किसीने बनाया तब तो नाम आया है। कैसे कहा जाय कि श्रुति अकृत्रिम है ? श्रुति प्रमाणभूत नहीं, किन्तु जिनेन्द्रदेवका उपदेश, दिव्यध्वनि वह प्रमाणभूत है, और भी बात देख लो— वेदवाक्योंमें श्रुतियोंमें पदकी रचना है ना ? वचन हैं, वाक्य हैं, पद हैं, क्रिया है, विभक्ति लगी है, तो ऐसी सारी बातें ये अकृत्रिम कैसे हो जायेंगी ? कोई पद हो, कोई रचना हो तो उसको किसीने बनाया है। उसे कैसे कहा जाय कि आकाश से उतरे या किसी से निकले ?

http://www.jainkosh.org

अपौरुषेय हैं, तो तीसरा कारण भी देखो कि जो फलको चाहने वाले पुरुष हैं उनको प्रवृत्ति हुई या उनको निवृत्ति हुई, उनका कारण बताया गया है।

चारित्रमें यह बताया गया है कि फलाने ऋषिको इससे वैराग्य हुआ, ये कारण जुटे। तो जहाँ ये वर्णन चल रहे हों उसे अकृत्रिम कैसे कह सकते ? किसीने बनाया ही तो है। तो श्रुति भी मनुसूत्रोंकी तरह हैं, जैसे अन्य और ग्रन्थ हैं मनुस्मृति आदिक वे किसी ऋषिके द्वारा रचे गए हैं, ऐसे ही समस्त श्रुतियाँ भी किसी न किसीके द्वारा रची गई हैं। उसके बारे म कोई यह दलील न दे कि ये श्रुति, वेद अपौरुषेय हैं, इनको किसी ने बनाया नहीं है, अकृत्रिम हैं, प्रमाणीक हैं। ····अरे प्रमाणता इससे नहीं आती। परीक्षा करने पर जो बात निर्दोष निकले वह प्रमाणभूत है। एक तो यह कृत्रिम अनादि से नही है और अनादिसे कोई परम्परा चली आये तो क्या वह सच कहलायगी ? पापकी प्रवृत्ति अनादिसे चली आ रही है, मिथ्यात्व अनादिसे चला आ रहा, तो जो गृहीत न हो, अनादि से चला आया हो, क्या वह सत्य कहलायगा ? सत्यता तो निर्दोषताके आधारपर बनती है। और फिर कोई वचन, कोई बात, कोई श्रुति अपौरुषेय नहीं है। अतः हे जिनेन्द्र देव तुम्हारे वचन निर्दोष हैं, क्योंकि आपमें कोई दोष नहीं है। आपकी ध्वनिमें जो निकल गया वह निर्दोष निष्पक्ष है, अतएव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आप ही परमेष्ठिताके स्थानभूत हैं।

स्मृतिश्च परजन्मनः स्फुटमिहेक्ष्यते,
कस्यचित्तथाप्तवचनान्तरात्प्रसृतलोकवादादपि।
न चाऽप्यसत उद्भवो न च सतो निमूलात्क्षय,
कथं हि परलोकिनामसुभृतामसत्तोह्यते ॥ १५ ॥

(५६) शुद्ध परमचेतनकी प्रसिद्धिके प्रसंगमें परलोकियोंकी सत्ताका कथन—

प्रभुका स्तवन किया जा रहा है और तत्त्वपर विचार चल रहा है। कोई यह सोच बैठे कि कहाँ प्रभु प्रभु लगा रहे हो? अरे चेतन ही दुनियामें कुछ नहीं है, प्रभु कहाँ से होगा? परलोक ही कुछ नहीं है, जितनी अपनी जिन्दगी है उतना ही सारा ठाठ है, मरेके बाद कुछ नहीं है। फिर आगे कोई मनुष्य प्रभु बनता, ब्रह्म लोकमें जाता, ये सब बातें कल्पनाकी हैं। ऐसी शंका कोई चित्तमें न करे, उनके प्रति यह कहा जा रहा है कि परलोक जाने वाले पुरुषोंको असत्ता कैसे कही जा रही है? है परलोक। एक लोकको छोड़कर अन्य लोकमें जीव जाता है याने यह जीव इस भवके बाद भी रहता है। कैसे? देखो—यहाँ ही अनेक लोगोंको पूर्वजन्मकी स्मृतियाँ होते हुए देखा गया है।

कोई घटनायें ऐसी होती हैं कि जिनमें बताया है कि मैं अमुक गाँवमें था। अमुक मेरे माता पिता हैं, अमुक

घर है, वहाँ यह वैभव है। तो पूर्वजन्मकी स्मृतियाँ यह बात सिद्ध करती है कि परलोक भी होता है। जब पूर्वभव भी मेरा कोई था, जहाँसे मरकर हम यहाँ आये तो अगला भव भी है। तो पूर्वजन्मकी स्मृतियाँ इस बातको सिद्ध करती हैं कि जीव शाश्वत है। इसका परलोक भी होता है। दूसरे जो पहुंचे हुए लोग हैं, योगीजन हैं, भगवान हैं उनके वचनोंसे भी यह जाहिर होता है कि आगममें भी कथन है कि वे पहुंचे हुए ऋषिजन भी बताते हैं। इससे सिद्ध है कि परलोक है कोई।

अब तीसरी बात सुनो—लोकमें इस बातका भी बड़ा प्रसार है, सभी लोग कहते हैं कि परलोक है। मरनेपर चिट्ठियां लिखी जाती हैं, बहुत पहिलेसे लिखी जाती हैं कि अमुक आदमीका परलोक हो गया। देहान्त हो गया, ऐसा कोई नहीं लिखता। सभी लोग लिखते कि अमुकका स्वर्गवास हो गया। मरनेके बाद चाहे नरक हो गया हो, पर लिखेंगे यही कि अमुकका स्वर्गवास (स्वर्गमें वास) हो गया है सो उसकी तेरहवींका निमंत्रण है और प्रायः करके आजके जमाने में नरकवासके अधिकारी अधिक होंगे, स्वर्गवासके कम होंगे। कोई कुछ भी बात बताये पर परलोक की सिद्धि तो है। है कोई परलोक।

चौथा कारण और सुनो कि देखिये असत्की

Report any errors at vikasnd@gmail.com

उत्पत्ति नहीं होती और सत्का, मूलका विनाश नहीं होता। यह नियम अकाट्य है। बड़े बड़े वैज्ञानिकोंसे, डाक्टरोंसे, विद्वानोंसे पूछ लो, जो लोग बड़े बड़े आविष्कार करते हैं वे भी यही कहेंगे कि जो भी है उसका मूलसे नाश नहीं होता और जो असत् है उसकी उत्पत्ति नहीं होती। तब यह कैसे कहा जा सकता कि परलोक नहीं है ? परलोक है। यह बात इसलिए सिद्ध करनी पड़ी कि कोई यह शंका करे कि भगवान को कहाँ लगाये फिर रहे हो ? जितनी जिन्दगी है उतना ही सब कुछ है, आगे क्या है ? कहाँ आत्मा, कहाँ परमात्मा ? तो आत्मा परमात्माका सन्देह करने वाले लोगोंको पहिले परलोककी सत्ता समझना चाहिए तब भगवानकी बात समझ में आयगी। परलोक जब जीवोंका है तो जिस आत्माने विषयकषायोंपर विजय प्राप्त किया, अपने आत्मामें अपने दर्शन किया, वह सर्व कर्म कलंकोंको नष्ट करके परमात्मा हो जाता है। सो हे प्रभो वह परमात्मा आप ही हैं।

न चाऽप्यसदुदीयते न च सदेव वा व्यज्यते,
सुराङ्गमदवत्तथा शिखिकलापवैचित्र्यवत्।
क्वचिन्मृतकरन्धनार्थं पिठरादिके नेक्ष्यते कथं,
क्षितिजलादिसङ्ग गुण इष्यते चेतना ॥१६॥

(५७) परमशुद्ध चेतनकी प्रसिद्धिके प्रसंगमें चेतनतत्त्वकी सिद्धिका कथन—

http://www.jainkosh.org

स्तुति तो की जा रही है प्रभुकी, पर प्रभुके साक्षात् गुणोंके रूपमें स्तुति की वह भी धन्य है, पर साथ ही प्रभु हैं और हो सकते हैं, इस तरहको युक्तियोंका वर्णन करना भी प्रभुकी स्तुति कहलाती है। पहिले बहुत अलंकारोंसे प्रभु की स्तुति करके अब यह बतला रहे हैं कि कोई यह शंका न करे कि कोई चेतना ही नही है, कोई आत्मा चीज ही नहीं है फिर परमात्मा किसे बताया जा रहा है ? और ऐसा सिद्धान्त मानने वाले अनेक लोग हैं। जिनका यह ख्याल है कि पृथ्वी, जल, अग्नि वायु जब ये सब इकट्ठे हो जाते हैं तो एक चेतना जागृत हो जाती है। चेतना कोई अलग चीज नहीं है, सत्ता नहीं है, ये सब मिल गए। इसमें कोई करेन्ट आ गई लो चेतन हो गया। चेतन कोई अलग चीज नहीं है। ऐसी शंका करने वालों के प्रति इस छन्दमें यह कह रहे हैं कि देखो जो असत् है, है ही नहीं, वह कभी उत्पन्न नहीं होता। वैसे लोग यह दृष्टान्त देते हैं कि देखिये जैसे कोदो आदिक अनाज हैं, उन्हे सड़ाया जाय तो उससे शराब प्रकट हो जाती है।

देखिये शराब न थी और प्रकट हो गई है तो इससे सिद्ध है कि जो असत् है वह भी उत्पन्न हो जाता है, लेकिन यह बात नहीं है। उन कोदो आदिक अन्नोंमें शराब होनेकी शक्ति है और जब वह सड़ी गली तब शराब बन गई। अभी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यहीं गन्नेमें देख लो—उसमें शराब है क्या ? अरे उसमें गुड़ है, शक्कर है, मिश्री है, मगर उसके राबसे शराब भी बना ली जाती है। कोई यह न कहे कि चीज न थी और प्रकट हो गई। कोई ऐसा न कहे कि चेतन नहीं होता है। कोई लोग तो यह कहते कि चेतन नहीं होता, किन्तु पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चार चीजें मिल गईं तो उसमें चेतना आ गई, तो ऐसा नहीं है अथवा देखिये—जो सत् है, जो मौजूद हो वही प्रकट होता है। जैसे मोर पक्षीके पीछे पंख प्रकट होते हैं तो उसमें हैं तब प्रकट होते हैं। तो जो सत् है वही तो व्यक्त हुआ करता है। अगर कोई यह कहे कि व्यक्त हो गया है। तो व्यक्त वही होता है जो मौजूद हो। कैसे कहा जाय कि चेतना नहीं है ? पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुके मिलनेपर चेतना नहीं खतम होती है तो चेतना सत् ही है तब व्यक्त हुई है। कुछ न हो तो वह व्यक्त नहीं होता। और देख लीजिए। अगर ऐसा नियम बनाओगे कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चारों मिल जायें तो चेतना निकल पड़ती है, तो इसकी भी बात सुनो—किसी मिट्टीकी हंडीमें खिचड़ी पकायी जा रही हो तो देखिये—वहाँ मिट्टी भी है, जल भी उसमें भरा हुआ है, अग्नि भी नीचे खूब तेज जल रही है, और हवा भी खूब उसमें भरी है तभी तो उस हंडीका पानी ऊपरको उछलता है। उस हंडीके ऊपर कोई ढक्कन रखा हो तो हवाके प्रभाव

से वह भी उछलकर बाहर गिर जाता है। तो देखिये वहाँ ये चारों चीजें (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु) मिल गईं ना, तब तो उसमेंसे हाथी, घोड़ा, सिंह, मनुष्य आदि निकल पड़ने चाहियें थे, क्योंकि आपने कहा कि इन चारों चीजोंके मिल जानेसे चेतना प्रकट होती है, पर ऐसा तो कहीं नहीं देखा जाता। इससे चेतना वास्तवमें है और वह जैसे कर्म करता है वैसा फल भोगता है। जन्म मरण करता है। यदि इस चेतनाको अपने ज्ञानस्वरूपकी सुध हो जाय और ज्ञानस्वरूपमें मग्न हो जाय तो इसे मोक्ष प्राप्त हो जाता है और परमात्मस्वरूप प्रकट हो जाता है।

प्रशान्तकरणं वपुर्विगतभूषणं चाऽपि
ते समस्तजनचित्तनेत्रपरमोत्सवत्वं गतम्।
बिनाऽऽयुधपरिग्रहाज्जिन ! जितास्त्वया दुर्जयाः
कषायरिपवो परैर्न तु गृहीतशस्त्रैरपि ॥ १७ ॥

(५८) निसर्गसुन्दर प्रभुकी कषायरिपु विजयताका वर्णन—

हे जिनेन्द्रदेव ! आपने दुर्जय कषायोंपर विजय प्राप्त कर ली। जरा अपने हृदयपर दृष्टि देकर सोचो कि इन विषय कषाय बैरियोंका जीतना कितना कठिन है ? क्रोध सब गुणों को फूंक देता है और समय-समयपर व्याख्यानमें बड़े उपदेश की बातें कह दी जाती हैं और फिर ऐसे समयपर, घटनाओं पर ये कषाय प्रकट हो जाती है। कषायें क्यों हैं ? ये क्रोध,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

मान होना, घमंड होना—मैं सबसे उच्च हूं, यह बात जब हृदयमें बैठती है और बात करते समय, व्यवहार करते समय यह बात चित्तमें बनी है कि देखो मैं इन सबसे श्रेष्ठ हूं, कितने ढंगसे कह रहा हूं, कैसा लोग सुनते हैं,····किसी भी प्रसंगमें ले लो, एक नेताकी तो बात क्या, भिखारियोंमें भी यही बात है। वे भी अपनेको एक दूसरेसे उच्च मानते हैं, कलावान मानते हैं। तो यह मान कषाय भी कितनी दुर्जय है ?

बड़े-बड़े पुरुषोंने भी इस मानकषायके वशीभूत होकर बड़े-बड़े युद्ध ठान दिए। भरत चक्रवर्तीने जब बाहुबलिके पास सन्देश भेजा तो बाहुबलि सोचने लगे कि मैं क्यों भरतको नमस्कार करने जाऊँ ? मैं भी उसी तीर्थंकरका पुत्र हूं जिसके पुत्र भरत हैं। लोग इसको बड़े प्रेमसे बोलते हैं कि बाहुबलि स्वाभिमानी थे, हाँ थे तो स्वाभिमानी, पर क्या मान कषाय रच भी न थी ? न माना बाहुबलिने तो भरतने चढ़ाई कर दी। क्या भरतके मानकषाय न थी ? अरे ताली तो दोनों हाथोंसे बजती है। भले ही पीछे सुधर जायें, मगर द्वन्द्व होता है तो एक तरफसे नहीं होता।

तो बड़े-बड़े पुरुष भी इस मानकषायके वशीभूत रहे, समझ लो कि यह मानकषाय कितनी दुर्जय चीज है ? माया, छल, कपट बड़े-बड़े धर्मकार्य करें, तो वहाँ भी छल, कपट

व्यापारके कार्य करें तो वहाँ भी छल कपट, तो यह माया कषाय भी बड़ी दुर्जय है। कोई सफाई नहीं दे सकता अपनेमें कि मेरेमें माया नहीं है। कहने वाले भी बहुत मिलेंगे कि जो मेरे चित्तमें आता, बस उसे मैं कह देता, हृदयमें नहीं रखता, तो यह भी एक माया है। लोग समझें कि यह बड़ा साफ आदमी है, इसलिए उसने माया रख ली ना। हृदयमें बड़ी लोभकषाय भी दुर्जय है। प्रायः सभी लोग दुःखी हैं तो उनके उस दुःखका कारण है लोभकषाय। क्या जरूरत पड़ी है कि मैं संसारका सबसे अधिक धनिक बनूं ? अरे जो लोग धनिक नहीं हैं उनका गुजारा नहीं चल रहा है क्या ? पर उन धनिकोंके पास करोड़ोंका धन होकर भी लोभ लालच तृष्णाके वशमें होकर दुःखी रहा करते हैं। वे वर्तमानमें पाये हुए सुख साधनोंसे भी कुछ लाभ नहीं उठा पाते।

तो ये सभी कषायें बड़ी दुर्जय हैं, लेकिन हे नाथ ! आपने इन समस्त दुर्जय कषायोंपर भी विजय प्राप्त कर लिया। कैसे जीता ? यहाँ तो कोई किसी बैरीको जीतता है तो वह शस्त्रों द्वारा जीतता है, मगर आपके पास तो कोई शस्त्र भी नहीं है, फिर भी आपने कषाय बैरियोंको जीत डाला। अन्य लोग जो शस्त्र धारण करते हैं वे कषाय बैरियोंको नहीं जीत सकते, पर आपमें ऐसी क्षमता है कि आपने कषाय

http://sahjanandvarnishastra.org/

बैरियोंको जीत डाला। इन कषाय बैरियोंका जीतना ज्ञान-बलसे होता है, न कि शस्त्रों द्वारा। हे नाथ! आपका यह आकार, आपकी यह मुद्रा प्रशान्त है। जहाँ इन्द्रियाँ शान्त हो गयी हैं, जिसे दूसरे लोग देखें तो उन्हें शान्तिका शिक्षण प्राप्त होता है।

देखो—आपके इस शरीरमें कोई भूषण तो नहीं पहिनाया गया है, फिर भी आपका चित्त और आपके नेत्र बड़े बड़े लोगोंको आनन्दित करने वाले और उत्साह देने वाले हैं। तो लोग बड़ी प्रीतिसे अपने नेत्रोंको खोलकर आपकी मुद्राका दर्शन करते हैं। बतलाओ प्रभुकी मुद्रा क्या है? न मुकुट, न आभूषण, न वस्त्र, केवल एक शरीर शरीर है, लेकिन आपके शरीरकी इन्द्रियाँ शान्त हो गयी हैं, इसलिए आपमें सुन्दरता अपने आप बढ़ गई। अब इससे जानें कि किसी पुरुषमें अगर सुन्दरता नष्ट होती है तो इन इन्द्रियोंकी उद्दण्डताके कारण नष्ट होती है। जहाँ इन्द्रियाँ शान्त हैं, ऐसा आपका शरीर है वहां बिना ही आभूषणके परमसुन्दरता प्रकट हो रही है। नाथ! आप ही परमेष्ठिताके लायक हैं, क्योंकि आपका गात्र, आपका आकार, आपकी मुद्रा, आपका वचन सर्व प्राणियोंको हितकी शिक्षा देने वाला है।

विधास्तरतमार्थवद्गतिसमन्वयान्वीक्षणा-
द्भवेत्खपरिमाणवत्क्वचिदिह प्रतिष्ठा परा।

प्रहाणमपि दृश्यते क्षयवतो निर्मूलात्क्वच-
चित्तथाऽयमपि युज्यते ज्वलनवत्कषायक्षयः ॥१८॥

(५९) निर्दोषतासे व गुणपरिपूर्णतासे प्रभुकी महिमा—

प्रभु आप क्यों महान कहलाते हैं? महान होनेके दो कारण होते हैं—(१) दोष जरा भी न हों, (२) गुण पूरे प्रकट हो गए हों। सबसे बड़ा कौन है? तो लोग कहेंगे कि भगवान ईश्वर। किन्तु किन्हीं भी शब्दोंमें कहें—सबसे बड़ा कौन? जिसमें दोष रंच भी न रहें और गुण पूरे प्रकट हो गए हों। यहाँ कोई यदि यह प्रश्न करे कि कहीं ऐसा हो भी सकता है क्या कि कोई आत्मा ऐसा हो जिसमें दोष रंच भी न रहा और गुण पूरे प्रकट हो गए। यह तो एक असम्भवसी बात लगती है। आचार्यदेव इस छन्दमें इस ही का समाधान दे रहे हैं।

देखो—जो चीज बढ़ती रहती है वह पूर्ण बढ़ सकती है। थोड़ा इसके साथ एक विशेषण और लगा दें—जो बात बिना किसी दूसरेकी सहायताके बिना, दूसरेके संगके या निमित्तके अभावमें स्वयं सहज अपने आपकी ओरसे बढ़ा करती हो वह चीज कहीं पूर्ण बढ़कर रहती है। यह तो है गुणोंकी पूर्णताका समाधान। देखो—ज्ञान किसीमें बड़ा है, किसीमें और अधिक बड़ा है और यह ज्ञान बढ़ता है परपदार्थके संगके अभावमें, निमित्तके अभावमें, अपने आपके स्वभाव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

की ओरसे। तो जब यह ज्ञान अपने आप परकी सहायता बिना, परके निमित्त बिना बढ़ता हुआ देखा जा रहा। कर्मोंका क्षयोपशम होनेपर बढ़ता है, कर्मोंके दूर होनेसे ज्ञान बढ़ता है। तो जब इतनी बुद्धि देखी जा रही है तो यह निश्चित है कि कहीं यह ज्ञान परिपूर्ण बढ़ जाता है यह तो है किसका समाधान कि हे प्रभो! आप गुणोंमें परिपूर्ण हो और आपके दोष रंच नहीं रहे। युक्ति यह है कि जो चीज विनाशीक है, नहीं होती है, मंद होती है उसका कहीं न कहीं पूर्ण विनाश होता है। इसके साथ यह भी चीज लगा लो। जो चीज परप्रसंगसे बनती है वह परप्रसंग बिना नष्ट होती है। तो जो परप्रसंग बिना नष्ट होनेकी ओर होती है वह कहीं न कहीं पूर्णतया नष्ट हो जाती है। तो ये रागादिक दोष ऐसे ही तो हैं– किसीमें राग कम है, किसीमें और कम। क्योंकि उसके कर्मका आवरण एक नहीं है। तो जब इस तरहसे ये सब कम-कम देखे जाते हैं तो यह निश्चित हो गया कि कोई ऐसा भी चेतन है, आत्मा है, जहाँ दोष रंचमात्र भी नहीं रहता। जहाँ दोष रंच भी न हों और गुण परिपूर्ण हों उसे परमात्मा जिनेन्द्र कहते हैं। हे प्रभो! आप ही परमेष्ठिताके पदके योग्य हैं, क्योंकि आपमें दोष रंच नहीं रहे और गुण परिपूर्ण प्रकट हो गए।

(६०) अन्तर्दृष्टिबलसे प्रभुमहिमापरिचयकी स्पष्टता—

http://www.jainkosh.org

देखो परमात्माकी बातें जब अधिक समझमें आती हैं तब तो आगमें भी कुछ देखा जाय केवल वचनोंसे, केवल बाहरी बातोंमें सुननेसे परमात्माकी महत्ता ज्ञात नहीं होती। मैं हूं, जब अपने आपमें भी अपनी कला, अपनी शूरता, अपना अनुभव मिलता तो उससे परमात्माके अनुभवकी बात विदित हो सकती है। अपनेमें घटाकर देखें तब रागद्वेष, मोह, कषायें कम होती हैं तब हमारा ज्ञान भी स्वरूप रहता है, ज्ञान भी बढ़ता है। और जैसे ज्ञान बढ़ता है, ये रागादिक घटते हैं तो यह बात कहीं न कहीं एक पूर्णताको प्राप्त हो जाती है। ज्ञानकी बढ़ती पूर्ण कहीं है और रागकी हानि पूर्ण कहीं है। तो जहाँ रागादिक दोष रंच नहीं हैं और ज्ञानकी पूर्णता है उसीको परमात्मा कहते हैं। तो हे प्रभो! आप ही परमेष्ठिता के योग्य हो, इसलिए हम अपने ही कर्मोंके विनाशके लिए आपका स्तवन कर रहे हैं। स्तवन करनेका मेरा और कोई प्रयोजन नहीं। इससे भाई तुम्हें अपना उद्धार चाहिए तो बस दो ही बातोंका सहारा है—(१) प्रभुभक्ति, (२) आत्मस्वरूपकी सुध लेना। बाकी सब बेकार बातें हैं। जितनी प्रगति आप इन दोनों दिशाओंमें करेंगे उतना ही आप अपना उद्धार पायेंगे और शांति पायेंगे। बाकी तो चार दिनकी यह चाँदनी है, मिट जाने वाली है। इसके मोहमें लगावमें तो एक पाप का ही बन्ध है, लाभ कुछ न मिल पायगा। जितना अपने

Version 1

आपकी सुध रहेगी, ज्ञानप्रकाश रूप अपना अनुभव बनेगा वही साथ देगा।

> अशेषविदिहेक्ष्यते सदसदात्मसामान्यविज्ञिनः
> प्रकृतिमानुषोऽपि किमुताखिलज्ञानवान्।
> कदाचिदिह कस्यचित्क्वचिदपेतरागादिता
> स्फुटं समुपलभ्यते किमुत ते व्यपेतैनसः ॥१६॥

(६१) सर्वज्ञताके विषयमें शंका और उसका समाधान—

इस छन्दमें इस बातका संकेत करते हैं कि जगतमें महान् कौन है? जो गुणोंसे परिपूर्ण हो और दोषों से पूर्णतया रहित हो। आत्माका गुण है ज्ञान। मुख्यतया ज्ञानभावसे ही आत्माकी परख होती है। तो जो ज्ञानमें परिपूर्ण हो सो महान् है, और दोष क्या कहलाते हैं? रागद्वेष मोह आदिक ये जहाँ रंचमात्र भी न रहे हों सो महान् है। तो ऐसे महान् हे जिनेन्द्रदेव! आप ही हो। ऐसा साधारण लोग माननेको तैयार नहीं हो पाते। उनके मनमें यह शंका रहती है कि क्या कहीं ऐसा भी हो सकता है कि कोई तीनों लोकालोकको जान लेते या कोई ऐसा भी हो सकता है क्या कि जिसमें रागद्वेषादिक रंच भी न हों? साधारण लोग ऐसा क्यों नहीं मान पाते कि वे अपनी मापसे जगतका माप करने की आदत रखते हैं। तब खुदमें यह बात असम्भवसी जंच रही कि क्या ऐसा भी होता है कि रागद्वेष रंच न हों? कितने

भी मोह रागादिक कम कर लिये, पर ऐसी स्थिति आत्मामें होती ही नहीं, और हो जाय मान लो तो वह आत्मा ही न रहेगा। ऐसी बुद्धि अपनी मापसे मापनेकी होती है। इसी तरह क्या कोई गुणोंमें परिपूर्ण हो सकता है? अरे कितना ही जाने, ज्ञान है, ज्यादा जान लेना, मगर सारे लोकको जान सके, यह बात सम्भव नहीं जंचती। ऐसा सन्देह साधारण जनोंको होता है।

जैसे कोई कहे कि यह लड़का तीन फुट कूद लेता है, यह ५ फुट कूद लेता है तो कोई कहे कि यह १०० कोशकी ऊँची कूद मार लेता है तो इसे कौन स्वीकार कर लेगा? इसी तरह साधारण जनोंके चित्तमें यह बात आती है कि किसीने १० कोशकी बात जान ली, किसीने १० हजार कोश की जान ली और ज्यादा जान लिया तो नरकोंकी और स्वर्गों की बात जान ली, पर ऐसा कोई हो सकता है क्या कि सारे लोक और अलोकको, भूत, भविष्य और वर्तमानकी समस्त बातोंको एक साथ जान जाय? साधारण जन तो कहेंगे कि यह तो एक गप्प लगा रखी है, ऐसी जब शंका होती है तब उनको समाधान दिया कि दो पद्धतियाँ करनी पड़ेंगी।

देखो ज्ञानबलसे विचारो कि जो बात किसी परपदार्थका संसर्ग होनेस बढ़ती है और परपदार्थका संसर्ग कम होनेसे कम होती है, तो वहाँ यह निर्णय बना लेना चाहिए

Report any errors at vikasnd@gmail.com

कि ऐसी कम होने वाली बात कहीं बिल्कुल भी नहीं हो सकती। दूसरी पद्धति क्या कि परपदार्थका हटाव होनेसे जो बात बढ़ती है वह कहीं न कहीं पूर्ण बढ़ सकती है। जैसे ज्ञान। ज्ञान कर्मके हटनेसे बढ़ता है और कर्मके आनेसे घटता है। तो कर्मनिमित्तका हटाव होनेसे यह ज्ञान बढ़ता है तो कर्म तो बाहरी चीज है। जहां इनका पूरा हटाव हुआ कि पूरा ज्ञान बढ़ जायगा। और कर्मके होनेसे राग बढ़ता है, कर्मके हटनेसे राग घटता है। जहां परपदार्थ हटे कि राग पूर्णतया हट जायगा।

यहां आचार्यदेव सामान्यतया यह समझाते हैं कि देखो—यहां जो कोई सत और असत रूपसे सामान्यतया जाना गया, सत ६ द्रव्य हैं, उनको सामान्यतया जाना गया, ६ द्रव्योंसे अतिरिक्त कुछ नहीं है, यह बात जिसने समझली, इतनी ही बात समझ लेनेपर वह सबका जाननहार हो गया। तब इतनी बात किसी भी ढंगसे सबका जाननहार देखा जाता है जो कि प्रकृतिसे मनुष्य बना हुआ है। जब यहां मनुष्य भी किसी पद्धतिमें सारे विश्वके जाननहार हो सकते हैं तो भला जो समस्त ज्ञानवान है, जहां ज्ञानावरणका क्षय हो चुका है वह सारे लोकालोकको जान जाय तो इसमें क्या आश्चर्य? यहां यह बात समझनी है कि देखो यदि आपने निज और परका ज्ञान कर लिया, निज यह मैं आत्मतत्त्व हूं और इसके

http://www.jainkosh.org

अतिरिक्त जितने जो कुछ हैं सत् वे सब परतत्त्व हैं तो निज और परके इतना समझ लेने पर आपने सबको जान लिया या नहीं। एक ऐसी पद्धति है, पर जहां प्रयोजन कुछ नहीं और रख रहे हों और उनको इसमें विश्वास न होगा कि इसने सब जान लिया। रागद्वेषका जब प्रयोजन होता, विषयसाधनका जब प्रयोजन होता तब उनको आश्वासन नहीं होता कि उसने सब कुछ परख लिया, किन्तु जो मोक्षमार्गी पुरुष है, जिसे केवल आत्महितकी वाञ्छा है वह इस मार्गमें चलता हो तब यह निर्णय बना लेते हैं कि यह तो हूं मैं स्व और बाकी हैं ये सब पर, लो उन्होंने सब जान लिया। क्या कमी रही? मतलब क्या? न जान सके तो उसका क्या बिगाड़, पर उस रूप से तो उसने सबको जान लिया।

इसका प्रयोजन इतना था कि समस्त परसे होता है। हटते हटते वह प्रयोजन हमारे इस ज्ञानमें पूर्ण होता है तो जब यहां भी प्रकृतिसे मनुष्य होकर भी एक सत् असत् सामान्यको समझकर जब यह अशेषज्ञ देखा जाता है तो फिर जो समस्त ज्ञानावरणका क्षय होने पर जिसके पूर्ण ज्ञान प्रकट हो गया है वह सर्वज्ञ है, ज्ञानमें परिपूर्ण है, इसमें कौन सा संदेह है? दूसरी बात– जब हम यहाँ ही कितने ही मनुष्यों को ऐसा निरखते हैं कि किसीके कहीं रागादिक नहीं हैं, कम है, अत्यन्त कम हैं, और ऐसे लोग देखे जाते हैं, हम यह कह

Version 1

सकते हैं कि इसके राग नहीं है। जैसे जो कुछ अबुद्धिपूर्वक राग करें, व्यवहार उनका ऐसा है कि व्यावहारिक राग नहीं है, उससे हम परख लेते हैं कि इसके राग नहीं रहा। तो जब कदाचित् किसीमें कहीं विरागताके दर्शन होते हैं तब फिर पापकर्म बिल्कुल भी न रहें, घातियाकर्म सब दूर हो चुके हैं, ऐसे पुरुषमें यदि पूर्ण विरागता है, रागद्वेषादिकसे पूर्ण रहितता है तो इसमें क्या सन्देह ? तो हे जिनेन्द्रदेव, आप ही गुणोंसे परिपूर्ण हैं और दोषोंसे रहित हैं अर्थात् इस परमेष्ठिता का स्थान आपको ही उचित है।

अशेषपुरुषादितस्त्वगतदेशनाकौशलं
त्वदन्यपुरुषान्तरानुचितमाप्ततालाञ्छनम्।
कणादकपिलाक्षपादमुनिशाक्यपुत्रोक्तयः
स्खलन्ति हि सुचक्षुरादिपरिनिश्चितार्थेष्वपि ॥२०॥

(६३) आप्तताका चिह्न देशनाकौशल—

हे भगवन् ! आपकी आप्तताका लांछन क्या है ? इस बातका वर्णन इस छन्दमें किया है। लाञ्छनका अर्थ दोष नहीं। लांछन कहते हैं चिन्हको, पहिचानको। लोगोंने कितने ही शब्दोंका ऐसा विरूप अर्थ किया है कि जिसका अर्थ तो उत्तम है, मगर उसका एक दोषपूर्ण उत्तर कर दिया। इसका तो लांछन लग गया। अरे लांछनके मायने दोष नहीं है, लांछन मायने पहिचान है। अब बात यहाँ होने लगी कि

जहाँ बहुतसे लोग हैं उनमें अगर किसीमें विशेषता आये तो तब ही आ सकती है जब कि वह खूब पाप करे, बुरा काम करे। सब लोग साधारण रूपसे रह रहे हैं, लौकिक जन रह रहे हैं, किसीका नाम ही महान नहीं हो पा रहा हो, तो नाम उसका बड़ा हो जाता है जो दोष करे, पाप करे। तो लांछन के मायने चिन्ह। सब लोगोंसे विशेष रूपसे पहिचानेगा कौन ? जो दोषी पुरुष हो। लो बड़ी जल्दी इसका एक लांछन लग गया, चिन्ह मिल गया। बहुतसे लोगोंमें किसी एक विशेषको अलग करके पहिचाननेका चिन्ह बना हो, लेकिन वह है दोष रूप, इसलिए लांछनका अर्थ दोषरूप प्रसिद्ध हो गया।

यहाँ आचार्यदेव यह कहते हैं कि आप आप्त हैं, सर्वज्ञ हैं, इसकी पहिचान क्या है, लांछन क्या है ? तो कहते हैं कि पहिचान यह है कि समस्त पुरुषोंको तात्विक उपदेश देनेमें कुशलता है आपके, इसीसे यह जाना जाता कि हे जिनेन्द्र ! आप ही आप्त हैं। देखो—श्रेणीमें क्रमसे लोगोंकी योग्यताके आधारसे किस आचरणका और किस ज्ञानका, बोध का सिलसिलेवार कथन है जैनशासनमें, जिस सिलसिलेको देखकर लोग सम्यग्दृष्टि बन सकते हैं। कितने ही लोग ऐसे देखे गए कि पहिले तो वे जैन न थे, पर जब उन्होंने जैनाचरण की परिपाटी देखी, प्रतिमाओंका स्वरूप समझा तो वे जैनधर्म के पूर्ण श्रद्धालु बन गए और वे स्वयं ही कह उठे कि अहो !

जैनधर्मकी प्रतिमापाटी कितनी उत्तम चीज है कि जिसका आलम्बन लेकर अपना उत्थान कर सकता है। आत्माके उत्थानका ऐसा सुन्दर उपाय अन्य जगह नहीं प्राप्त होता। अन्य जगह सामान्यतया कथन है, यों न करो, संन्यासी हो जाओ, उत्तम गृहस्थ बन जाओ, यों कोई क्रमवार कथन अन्यत्र नहीं पाया जाता। इसलिए हे प्रभो! देशनाकी कुशलता आपमें पायी गई। जिसके अनुसार समस्त प्राणियोंको उनकी योग्यतानुसार कल्याण प्राप्त होता है। ऐसी कुशलता प्रभुमें है।

(६४) प्रभुदेशनाकौशलकी बहिर्मुखपुरुषान्तरानुचितता—

प्रभो! जो आपकी कुशलताका चिन्ह है, वह बात अन्य लोगोंमें नहीं पायी जा सकती। अन्य ऋषिजन धर्म और अतीन्द्रिय तत्त्वकी बातमें तो क्या प्रवेश करें, जो इन्द्रिय से निश्चित होते हैं, ऐसे पदार्थोंमें भी वे चूक जाते हैं। अन्य तत्त्वोंकी बातका तो वर्णन ही क्या सही हो? यहाँकी बातोंमें ही वे चूक जाते हैं। कितने ही वर्णन ऐसे आते हैं कि अमुक ऋषिका पुत्र है या अमुक यों ही बिना माँ-बापके आ गया है, कितने ही कथन कर डालते हैं। जो इंद्रियजन्य बात है उसमें भी जब स्खलन देखा जाता है और तत्त्वों के बारेमें भी पदार्थोंका ज्ञान आ करके इस जीवमें ज्ञान बनता है आदिक अनेक बातें ऐसी हैं कि जो सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष

http://www.jainkosh.org

द्वारा भी निश्चित कर सकते थे। उनमें भी अब स्खलन देखा गया है तो अन्य अतीन्द्रिय पदार्थोंमें प्रवेश ही वहाँ क्या है?

(६५) प्रभुके उपदेशकी सार्वभौमता—

यहां प्रभुकी स्तुतिमें यह बात बतायी जा रही है कि भगवान आप ही आप्त हैं। आप्तका अर्थ है पहुंचे हुए। जो आप्त पद है वहां पहुंचे हुए आप ही हैं। कैसे समझें कि आपकी जो वाणी है वह सर्वहितकारी है। श्रावकोंको उपदेश किया है कि त्रस जीवकी हिंसा त्यागें। और बढ़ें तो स्थावर जीवोंकी हिंसा त्यागें। लो उनका भी भला हुआ और जिन जीवोंकी हिंसा बची उनका भी कल्याण हुआ। वे मन वाले नहो हैं एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय आदिक जीव, तो उनका उपदेश क्या दिया जाय? किस तरहसे उनका कल्याण बनाना? तो लो जो मन वाले जीव हैं उनको अहिंसाका उपदेश दिया, इससे उनका भी कुछ कल्याण हुआ। तो आपकी जो वाणी है वह सर्व जीवोंका हित करने वाली है, इसलिए प्रभु आप ही आप्त हैं और आपका लेशमात्र भी कोई भक्तिभावसे स्तवन करे तो वह अनेक भवके कर्मोंको छेद सकता है।

तथ्य तो यह है कि हम आप सबके लिए केवल दो ही बातें शरण हैं— एक तो प्रभुके स्वरूपकी भक्ति चाहिए और दूसरा आत्माके स्वरूपका स्मरण चाहिए। इन बातोंको

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चाहे कोई पत्थरमें लिखकर देख ले, इन दो बातोंके सिवाय और कोई शरण हो सकता हो तो बताओ। यहाँ भी जो व्यवहारमें धर्मके साधन मानते हैं और उनका शरण गहते हैं उसमें ये दो प्रयोजन हैं। तो वास्तविक शरण तो ये दो बातें हैं। तीसरी और कुछ भी शरणकी चीज नहीं है। इतना निर्णय तो बनाये रखें। क्रोध होनेपर अगर जो कुछ बढ़ रहा है, किया जा रहा है, मगर इसका तथ्य क्या है, त्रुटि क्या है, सार क्या है, इसकी सही प्रतीति तो बनाये रहें। मेरे आत्मा का सिवाय इन दो भावोंके और कुछ भी शरण नहीं। केवल भाव ही शरण है।

परैरपरिणामकः पुरुष इष्यते सर्वथा,
प्रमाणविषयादितत्त्वपरिलोपनं स्यात्ततः।
कषायविरहान्नचाऽस्य विनिबन्धनं कर्मभिः,
कुतश्च परिनिर्वृत्तिः क्षणिकरूपतायां तथा ॥२१॥

(६६) अपरिणामिताके एकान्तवादमें प्रमाण विषय आदि तत्त्वोंका लोप—

यह पात्रकेशरी स्तोत्र है। इसके बनाने वाले आचार्य श्री विद्यानन्दि स्वामी हैं जो कि ५००-७०० वर्ष पहिले हो चुके हैं। उनकी बुद्धि कितनी प्रखर थी, इस बातको उनके ही द्वारा रचित अष्टसहस्री ग्रन्थका अध्ययन करने वाले दार्शनिक लोग ही जानते हैं। तो वे आचार्यदेव यहाँ प्रभुका स्तवन कर रहे हैं। अब समझो जो दार्शनिक पुरुष है वह जो करेगा तो उसमें दार्शनिकताकी बात आ ही जायगी। जिसकी जो आदत है वह कैसे छूटे? तो यहाँ आचार्यदेव दार्शनिकता की बात रखते हुए प्रभुका स्तवन कर रहे हैं। हे नाथ! अन्य लोगोंने इस पुरुषको, इस आत्माको अपरिणामी माना है, लेकिन जो लोग पुरुषको अपरिणामी मानते, एक अव्यापक मानते, ज्योंका त्यों ही रहता है, उसमें कोई ज्ञानतरंग नहीं उठती, ऐसा मानने वाले पुरुषोंके यहाँ प्रमाण विषय आदिक तत्त्वोंका लोप स्वतः हो गया। जब एक ब्रह्म ही ब्रह्म रहा तो ज्ञेय पदार्थ भी कुछ न रहे। और उन ज्ञेयोंको जाननेका प्रमाणभूत कोई साधन न रहा तो प्रमाण और ज्ञेय इन सब पदार्थोंका लोप हो जाता है, तब फिर व्यवस्था किसकी करें? जाना किसने? समझा कौन? तो यह तीर्थप्रवृत्ति सब नष्ट हो जायगी। किन्तु हे नाथ! आपने यह बतलाया है कि यह आत्मा ज्ञानस्वरूप है और वह परिणमनशील है, सो इसमें निरन्तर जानकारी बनती रहती है, और उस जानकारीके बलपर लोग दूसरेको समझाते हैं, दूसरे लोग समझते हैं। लो धर्मकी प्रवृत्ति चल उठी। तो आत्मा अनेकान्तात्मक है, यह एक जैनशासनका वाक्य है और इसमें सारी गुत्थियाँ सुलझ जाती हैं। क्या संसार है, क्या धर्म है, क्या मोक्ष है? ये सब व्यवस्थायें इसके निर्णयपर ही बनेंगी कि यह पुरुष, यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

आत्मा नित्यानित्यात्मक है।

(६७) आत्माको सर्वथा अबंध माननेमें मोक्षमार्गके लोपका प्रसङ्ग—

कुछ लोगोंने अपरिणामिताके साथ-साथ और भी जो ऐसा मान रखा है कि जो पुरुष है वह तो अछूता है, निरन्तर शुद्ध है। वहाँ कोई नहीं है तो भला ऐसा सत्य ब्रह्म हो जहाँ कषाय न हों तो वहाँ फिर बंधन कैसे होगा? और बंधन न होगा तो मोक्ष किसका कराना? मोक्ष किसको चाहिए? इस जीवको। तो यह निश्चय है कि इस जीवको अभी बंधन लगा है तब ही तो मोक्ष चाहिए। बंधन लगा, क्योंकि इसमें कषाय हुई। तो यह सिद्ध हुआ कि जीव इस समय कषाययुक्त है, मलिन है। कषायें क्यों हुईं? पूर्वकर्मका उदय है। वे कर्म कैसे हुए, कबसे थे? यों कषाय और कर्म, द्रव्यकर्म और भावकर्म ये सब अनादि संततिसे चले आये हैं, और इस समय यह जीव एक विचित्र स्थितिमें आ गया है, अनादिसे बंधनमें पड़ा हुआ है, इसे करना है मोक्ष। तो मोक्ष करनेका उपाय क्या है? भेदविज्ञान। जितने भी जीव सिद्ध हुए हैं वे भेदविज्ञानसे सिद्ध हुए।

भेदविज्ञानका अर्थ है— "निजको निज परको पर जान।" यह मैं आत्मा सहज अपने सत्त्वसे एक चित्स्वभाव मात्र हूं, ज्ञानस्वभावमात्र हूं। कषायें आयें तो यह भी कर्मकी

http://www.jainkosh.org

छाया है, ये मैं नहीं हूं, कर्म आयें तो ये प्रकट परपदार्थ हैं। शरीर साथ लगा है तो यह प्रकट परपदार्थ है। बाहरी चीजें तो परक्षेत्रसे स्वयं भिन्न पड़ी हुई हैं। यों समस्त परसे भिन्न अपने आपको समझ लेना, यही है भेदविज्ञान।

(६८) व्यर्थका मोह व उससे बरबादीका लाभ—

मोहमें, परके लगावमें किसीका भला नहीं हो सकता। भले ही ऐसा जच रहा कि मेरा जीवन तो इस कुटुम्बके आधारपर है, मेरा शरण तो ये सब लोग हैं। अरे यह सब भ्रम है। मेरा जीवन इनके आधारपर नहीं। वे स्वतंत्र हैं, मैं स्वतंत्र हूं, उनसे मेरेमें कुछ नहीं आता, मेरेसे उनमें कुछ नहीं जाता। मेरे कर्म मेरे साथ हैं, उनके कर्म उनके साथ हैं। और जो लोग विशिष्ट मोही हैं उनके जब इष्टका वियोग हो जाता है तो वे भी कहीं मर थोड़े ही गए, जिन्दा तो हैं, कैसे एक हैं? उनमें कोई इष्टवियोगमें स्वयं आत्मदाह कर ले, मर जाय तो कहीं उसके वियोगसे इसका मरण नहीं हुआ, किन्तु इसने स्वयं अपनी कल्पना बनाकर अपनी चेष्टा की। तो जगतमें हम आप किसीका भी कोई भी दूसरा जीव कुछ भी नहीं है, शरण नहीं है, मोह करना व्यर्थ है। भले ही थोड़े पंचेन्द्रियके विषयोंकी आकांक्षा जगती है और उसका सम्बन्ध परपदार्थके साथ है। भले ही कोई परपदार्थ इसको भला मान लेंगे, लेकिन यह मालूम होना भी विपदा है। और जो विषय आकांक्षा हुई वह भी विपदा है और विषय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आकांक्षा होनेका जो कारण है अज्ञान, भ्रम, वह भी विपदा है। आत्माकी सम्पत्ति तो शुद्ध ज्ञानप्रकाश है। तो जहाँ जिन लोगोंने इस ब्रह्मको कषायसे अलग माना है उनके यहाँ बंध मोक्षकी व्यवस्था नहीं हो सकती। आपके निर्दोष वचन आपकी आप्तताको साबित करते हैं और जगतके जीवोंको हित के मार्गमें लगाते हैं। इसलिए हे प्रभो ! आप परमेष्ठिताके पदभूत हैं।

मनःविपरिणामकं यदिह संसृति चाश्नुते
तदेव च विमुच्यते पुरुषकल्पना स्याद् वृथा।
न चाऽस्य मनसो विकार उपपद्यते सर्वथा
ध्रुवं तदिति होध्यते द्वितयवादिताकोपिनी ॥२२॥

(६६) मनका विपरिणमन, संसार व मोक्ष माननेपर पुरुष-कल्पनाकी व्यर्थता—

ऊपरके छन्दमें यह बात कही गई थी कि जो लोग इस ब्रह्मको, पुरुषको कषायरहित मानते हैं उनके यहां बन्ध मोक्षकी व्यवस्था नहीं बनती। उसके उत्तरमें यदि कोई दार्शनिक यह कहे कि बन्ध मोक्ष पुरुषके साथ नहीं है, इसलिए दोषकी क्या बात है ? बन्ध मोक्ष तो उनके साथ लगा है, मोक्ष तो प्रधान प्रकृतिके साथ लगा है, तब किस बातका उलाहना है ? ब्रह्मको, पुरुषको बंध मोक्षसे रहित मानते, फिर उलाहनाकी क्या बात ? उसके समाधानमें यह छन्द कहा जा रहा कि यदि कोई ऐसा समझे कि मन ही परिण-

मन करता है, प्रकृति ही परिणमन करती है तो प्रकृतिका ही संसार रहा, प्रकृति ही भोग भोगे और मन ही भोग-प्रकृतिका कर्ता है। तो प्रकृति ही भोक्ता कहलायी। फिर पुरुषकी कल्पना करना व्यर्थ है। किसलिए पुरुष माना जा रहा है ? पुरुषमें तो बन्ध भी नहीं, मोक्ष भी नहीं, संसार नहीं, दुःख नहीं, फिर तपश्चरण भी नहीं, फिर पुरुषतत्त्व माननेकी कल्पना ही क्यों की जाती है ? पुरुष व्यर्थ हो गया। यहां पुरुष भी व्यर्थ हो गया और यहां मन भी, विकार भी सिद्ध नहीं हो सकता। केवल प्रकृतिमें कैसे विकार आयगा ? कुछ निमित्तनैमित्तिक भाव तो बताओ। तो यहां उसके मन में विकार ही उत्पन्न नहीं हो सकता, फिर तीसरा दोष यह है कि आपने दो बातें तो कबूल कर लीं कि पुरुष है और मन है, पुरुष है और प्रकृति है तो फिर अद्वैतवाद कहां रहा ? आपका सिद्धान्त है कि सर्व कुछ तत्त्व अद्वैतमात्र है तो फिर अद्वैतवादकी बात कहां रही ? इससे मानना होगा कि जीव स्वतंत्र है, कर्म स्वतन्त्र हैं, कर्मपरमाणु अलग हैं, जीव अलग है, जीव और कर्मका सम्बन्ध अनादिसे है और उस सम्बंधमें निमित्तनैमित्तिक सम्बंधसे उनका संसरण अनादिसे चला आ रहा है, रागद्वेष भाव चले आ रहे हैं।

पृथग्जनमनोनुकूलमपरैः कृतं शासनं
सुखेन सुखमाप्यते न तपसेत्यवश्येन्द्रियैः।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

प्रतिक्षणविभंगुरं सकलसंस्कृतं चेष्यते
ननु स्वमतलोकलिङ्गः परिनिश्चयैर्व्याहितम् ॥२३॥

(७०) असंयतमनोनुसारी शासनसे हितका अभाव—

हे जिनेन्द्रदेव ! जो आपके दर्शनसे बाह्य हैं, ऐसे पृथक् जनोंके, पृथक् पुरुषोंके मनके अनुकूल शासन बताये हैं और उस शासनमें यह प्रमुखता रखी है कि देखो सुखसे सुख प्राप्त होता है, तपश्चरणसे सुख नहीं प्राप्त होता। जिसकी इन्द्रियां वशमें नहीं हैं, जिसका मन संयममें नहीं है वह इन्द्रियसुख अथवा मानसिक सुखमें विघ्न नहीं चाहता, और चाहता है कि महत्त्व भी रहे तब उन्होंने ऐसा शासन गढ़ा है कि देखो सुखसे सुख प्राप्त होता है। यद्यपि यह बात एक दृष्टिसे ठीक है कि यदि आनन्दका अनुभव हो, आत्मीय सत्य आनन्दकी अनुभूति हो, तब आनन्द प्राप्त हो सकता है। लेकिन इस ओर उनकी दृष्टि नहीं है। उनकी तो सांसारिक सुखोंकी ओर दृष्टि है। ये लौकिक सुख प्राप्त होंगे। लौकिक सुखमें जो सन्तुष्ट रहेगा वह ही तो सुख पायगा याने अभीसे यह दुःखी रहने लगे—प्यासा रहे, भूखा रहे, कंकरीली जमीनपर लेटे, तो वह तो दुःखी ही रहेगा, आगे सुख उसे कैसे मिलेगा ? इस तरहका शासन उन पृथक् जनोंने गढ़ा है और उन पृथक् जनोंके मनके अनुकूल बनाया है। यदि लक्ष्य शुद्ध हो तो समीचीन बात बनती है। जिसकी इन्द्रियाँ वशमें हैं, ऐसे

http://www.jainkosh.org

पुरुषोंने यह बात कही है कि संतापसे कहीं सुख पैदा नहीं होता, किन्तु आनन्दके अनुभवसे आनन्द उत्पन्न होता है।

जैसे बताया गया है कि आनन्द ही बद्ध विशाल कर्मोंको जलानेमें समर्थ है, लेकिन वह आनन्द है कौनसा ? ज्ञानानुभवमें प्राप्त होने वाला आनन्द। और इसी कारण बाह्य तपश्चरणोंसे कोई सिद्धि होगी—यह बात भी न मानी जायगी। बाह्य तपश्चरण करते हुए लोगोंको, साधुओंको, योगियोंको भीतर यदि सत्य आनन्दकी झांकी हो रही है तो वह बात माननेके लायक है। तो हे प्रभो ! जो आपके शासन में बाह्य लोग हैं उन्होंने ही इस प्रकारका शासन बनाया कि सुखसे सुख मिलेगा। यहाँ ही यदि दुःखमें रहे तो आगे सुख की कहाँ आशा है ? ऐसा शासन बनाया है, लेकिन यह इष्ट शासन नहीं है, आत्माका हित करने वाला शासन नहीं है। उनका कहना है कि जब सब कुछ प्रतिक्षण विनाशीक है तब यह जीव भी विनाशीक है। तो जितनी देरको यह जीव है उतनी देर तो यह मौज ले ले, क्यों वहाँ भ्रममें आकर आगामी सुखकी आशा करके वर्तमानका मौज (सुख) खतम करते हैं ? इस तरहका भी शासन बाह्य पुरुषोंने, विरुद्ध पुरुषों ने बनाया है। लेकिन जिन्होंने लोकके चिह्नसे निर्णय किया है कि है परलोक, है जीवका नास्तित्व सदाकाल, उन्होंने यह बात भली-भाँति बता दी है कि उनकी यह युक्ति केवल एक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इन्द्रियके आधीन होकर बताई गई है ।

न सन्ततिरनश्वरी न हि च नश्वरी नो द्विधा,
घनादिवदभाव एव यत इष्यते तत्त्वतः ।
वृथैव कृषिदानशीलमुनिवन्दनादिक्रिया,
कथञ्चिदविनश्वरी यदि भवेत्प्रतिज्ञाक्षतिः ॥२४॥

(७१) क्षणभंगुरताके सिद्धान्तमें प्रत्यक्षविरोध—

क्षणिकवादियोंका ऐसा अभिमत है कि प्रत्येक पदार्थ एक क्षणको रहता है और अगले क्षणमें नहीं रहता है, कोई पदार्थ शाश्वत नहीं है । जो कुछ दिख रहा है यह भ्रम है । यहाँ जो परमार्थ वस्तु है वह उत्पन्न होती और अगले क्षण नष्ट हो जाती है । सभी चीजें क्षणभंगुर हैं । ऐसा कहने वालों से जब यह पूछा जाता है कि भला बतलावो तो सही कि जब मेरा आत्मा एक समयको हुआ, अगले समय कुछ न रहा और नये समयमें नया-नया आत्मा बनता है तो सुबहकी बात दोपहर वाली आत्माको याद कैसे रह गयी ? जैसे हम जो कुछ करें उसकी याद आपको न आयगी । जो हमने सोचा उसका स्मरण आप न करेंगे । तो इसी तरह एक शरीरमें जब जीव अनेक उत्पन्न हुए और वे सब नाना भिन्न-भिन्न हैं तो सुबहके जीवने जो काम किया उसके बाद तो अगले जीव पैदा हो गए । अब तो दोपहरमें रहने वाला यह जीव सुबहकी घटनाको कैसे याद कर पाता है ? लोगोंको याद तो

है ही सब । जो आज सुबह किया, कल किया, १०-२० वर्ष पहिले किया, वह भी याद रहता, तो कैसे याद रहा ?

(७२) सन्ततिकी कल्पना करके भी क्षणभंगुरताके सिद्धान्तकी व्यवस्थाकी अनुपपत्ति—

उक्त समस्याका समाधान वे क्षणिकवादी यों देते हैं कि देखो—जीव तो नये-नये होते रहते हैं, किन्तु उनकी संतान बनती जाती है । इस जीवके बाद जो नया जीव पैदा हुआ तो सारा समर्पण उसे कर दिया । अब तीसरा जीव हुआ तो उसने अपनी सारी याददाश्त अगले जीवको समर्पण कर दिया । यह नष्ट होता जाता है, यों संतति बनती रहती है अथवा समर्पण भी न सही, एक संतान तो बनी । इसमें दृष्टान्त दिया जाता है कि जैसे तेलका दीपक जल रहा है तो जो जल रहा है वह तो एक एक बूंद जल रहा है । तेल तो भरा हुआ है आधा पाव, पर क्या वह सारा तेल जल रहा है ? एक-एक बूँद जलता है । तो जिस समय जो भी दीप है वह एक बूँद वाला है, सारे तेल वाला तो नहीं है । एक बूँद वाला दीप है । वह एक क्षणको रहा, बादमें खतम हो गया, अब दूसरी बूँद आयी तो वह भी दीप बन गया । इस तरह जैसे उस तेलमें यदि करोड़ों बूँद हैं तो वहाँ करोड़ों दीप बने और उन करोड़ों दीपकोंके लगातार जलते रहनेमें यह पता नहीं पड़ पाता है कि लो यह दीप खतम हुआ, अब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

दूसरा दीप आया। वह तो एकसा लगता है और निरन्तर प्रकाश बना रहता है। इसी तरहसे एक शरीरमें कोई बिन्दु के माफिक जीव आता है, नया-नया काम करता जाता है, पर वह एक ऐसे सिलसिलेसे जीव हुआ कि उस संततिमें जीव को सब याद बनी रहती है, ऐसी एक संतान मान करके इस समस्याका समाधान किया गया है। उक्त समस्याके समाधान के सम्बन्धमें यहाँ आचार्यदेव यह प्रकाश डाल रहे हैं कि संततिको कल्पना करके भी व्यवस्था नहीं बनती। कैसे ? सो सुनिये—

(७३) क्षणिक आत्माओंकी संततिकी कल्पनाओंकी समीक्षा—

जिसको तुम संतति कहते हो, भला बतलावो कि वह संतति विनाशीक है कि अविनाशी है ? क्षण क्षणमें नया-नया होता है, इस तरह क्या यह संतति भी विनश्वर है या अविनश्वर ? अथवा दोनों किस्मका है या दोनों किस्मका नहीं है ? तो क्या बताओगे ? तो उन सबके उत्तर सुनो—प्रथम तो एक यह बात है कि जैसे मानो जंगलमें हजारों पेड़ खड़े हैं, उन पेड़ोंके समूहका नाम जंगल है, वन है। तो वन नाम कोई चीज को परमार्थभूत है क्या ? जो एक-एक पेड़ है वे ही तो वस्तु हैं। उनका फल होता है, उनकी अर्थक्रिया है। अब उन पेड़ोंके समूहका नाम रख दिया तो यह तो समझनेके लिए रखा या वन नामकी चीज कोई सारभूत है क्या ? वह तो समझनेके लिए उसका नाम वन रखा है। लेकिन परमार्थ वस्तु तो वे पृथक्-पृथक् पेड़ हैं। तो जो ऐसे पृथक् पृथक् जीव मान रहा है और उनके समूहका नाम संतान रख दिया तो एक संतान कोई परमार्थ चीज न रही। एक समझनेके लिए नाम रख दिया, इतने जीवोंका समूह, उसका नाम संतान। तो संतान कोई परमार्थ वस्तु न रही। अभाव ही रहा संतान का। और भी सुनो कि वह संतति यदि अविनश्वर है तो विनश्वर है सब कुछ इस प्रतिज्ञाका घात हो गया। लो कुछ चीज अविनाशी भी तो रहो और विनाशीक है तो जीवकी तरह संतति भी विनाशीक है, फिर कैसे दूसरे जीवको याद रहे ? हाँ जैनशासनमें तो जीवको नित्यानित्यात्मक माना गया है। प्रतिक्षणमें जो जीवकी पर्याय चलती है, अवस्था बनती है वह तो एक क्षण रही, अगले क्षण न रही, उस अवस्था विशेषकी दृष्टिसे जीव अनित्य है, किन्तु वह वही तो वस्तु है जिसमें यह पर्याय हुई और अगले समयमें उस तरहसे बदल गई।

http://www.jainkosh.org

जैसे एक अंगुली सीधी है उसे टेढ़ी की, मोड़ दी तो अंगुली तो वही है, पहिले सीधी थी, अब टेढ़ी हो गई। इसी तरह जीव तो वही है चाहे कितनी ही पर्यायोंमें आये। जैनशासनमें तो किसी भी प्रकारसे विरुद्धताकी बात नहीं आती,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लेकिन जिन क्षणिकवादियोंने क्षणिक माना है उनके यहां मन मोक्ष, सुख, दुःख, स्मरण आदिक किसीकी भी व्यवस्था नहीं बन सकती, और फिर देखिये कि जीव यदि क्षणिक है, क्षण-क्षणमें नया-नया होता है तो फिर खेती, व्यापार आदिक आरम्भ करना व्यर्थ है। कौन करे खेती ? खेती करे और कोई, फसल काटे और कोई, उसे खावे और कोई। जब तुमने मान लिया कि क्षण-क्षणमें नया-नया आत्मा उत्पन्न होता है तो फिर खेती करना, व्यापार करना, शील करना, दान-पुण्य करना, देव, शास्त्र, गुरु आदिककी आराधना करना, ये सब व्यर्थ हो जायेंगे, क्योंकि इन्हें करेगा और कोई और उसका फल कोई दूसरा भोगेगा। यदि कहो कि कथञ्चित् संतति अविनाशी है तब तो क्षणिकवादियोंके संकल्पका घात हो गया। लो कोई चीज सदा रहने वाली तो है।

(७४) प्रभुकी निर्दोष वाणीसे प्रभुकी आप्तताका परिचय—

यहां आचार्यदेव भगवानकी स्तुति कर रहे हैं। भगवानकी स्तुतिके मायने यह है कि भगवानके स्वरूपमें भक्ति उपजना। देखो जब भगवानके माता पिताका, वंशका, कुलका नाम लेकर भगवानकी स्तुति की जाती है तो उसमें जितना कुछ भी भगवानका परिणाम होता हो उससे कई गुना रुचि पूर्वक भगवानका परिणाम है। वस्तुस्वरूपके वर्णन करनेकी और तुलना करनेकी पद्धतिमें हे भगवन् ! आप बड़े हितैषी

हैं, बड़े निर्दोष हैं, सत्य हैं, पवित्र हैं। आपकी वाणीमें कहीं भी दोष नहीं आ रहा है। किसी मनुष्यको बुखार हो, खांसी हो, नजला हो तो उसकी आवाजसे पहिचान लिया जाता है कि यह मनुष्य तो रोगी है और उसीकी आवाजसे यह भी पहिचान सकते कि अब यह निरोग हो गया। तो जैसे आवाज निरोगताकी पहिचान करा देती है, इसी प्रकार वाणी और वचन वक्ताके निर्दोषताकी पहिचान करा देते हैं। और वक्ता निर्दोष ज्ञानमें आये तब ही तो भक्ति उमड़ेगी। तो उस निर्दोषताका परिचय मिलता है वचनोंसे और वचन ये सही हैं, इसीलिए यह निर्णय चल रहा है कि अन्य जनोंने जो शासन गढ़ा है वह जीवके लिए हितकारी नहीं है। वहां कोई शान्तिका मार्ग नहीं मिलता है, पर हे प्रभो ! स्याद्वादविधिसे आपने जो कुछ भी वर्णन किया है वह सत्य है, निर्दोष है और हितकारी है।

अनन्यपुरुषोत्तमो मनुजतामतीतोऽपि स,
मनुष्य इति शस्यसे त्वमधुना नरैर्बालिशैः।
क्व ते मनुजगर्भिता क्व च विराग सर्वज्ञता,
न जन्ममरणात्मता हि तव विद्यते तत्त्वतः ॥२५॥

(७५) प्रभुकी मनुजतासे अतीतता—

हे भगवन् जिनेन्द्र ! तुम अनन्य हो, पुरुषोत्तम हो। लोग आपको मनुष्य कहते हैं, लेकिन जब सिद्धान्तकी दृष्टिसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

कोई कहे तो कहेगा कि १४वें गुणस्थानमें भी मनुष्य है, १३वें गुणस्थानमें भी मनुष्य है, इस तरह हे जिनेन्द्र ! आपको लोग मनुष्य कहते हैं, तो सिद्धान्तदृष्टिसे बात तो नहीं कही जा रही है, किन्तु एक साधारण रूपसे कही जा रही है कि जो साधारण जन हैं वे आपको मनुष्य कहें तो जरा कुछ संगतसा नहीं होता, क्योंकि आप पुरुषोत्तम हैं और मनुष्यतासे परे हो गए हैं याने परमार्थ मन प्रकट हो गया है। एक लौकिक मनुष्यों को मनुष्य मान करके यह बात कही जा रही है कि आपको हम कैसे मनुष्य कहें ? और अनुभवसे भी देखो—भगवानकी भक्ति करने आप खड़े हों और यह कहें कि हे प्रभो ! आप बहुत अच्छे मनुष्य हो तो क्या कुछ अच्छासा लगेगा ? अरे हैं तो मनुष्य और १४वें गुणस्थान तक हैं, मगर प्रभुभक्तिमें कोई ऐसा कहता है क्या ? अरे ये तो मनुष्यतासे अतीत हैं याने परमात्मपदको प्राप्त हो गए हैं।

भला अन्तर भी तो देखो—कहाँ तो इतनी मनुज गर्जिता जिसका कि वर्णन आगेके छन्दमें आयगा। यहाँ प्रभु जिनेन्द्र तीर्थंकर देव जब गर्भमें आते हैं तो साधारण मनुष्योंके गर्भसे उनमें बड़ी विशेषता रहती है। कहाँ तो और लोगोंमें रहने वाला मनुष्यत्व जैसा व्यवहार और कहाँ आपकी वीत-रागता और सर्वज्ञताका प्रभाव। कैसे कहें कि आप मनुष्य हो ? आप तो मनुष्यसे ऊँचे उठ गए हो, मनुष्योंमें विरागता,

http://www.jainkosh.org

सर्वज्ञता कहाँ है ? जो लोग दिख रहे हैं उनसे तो आपमें बड़ी विशेषता है, उनसे आप अतीत हो गए हैं। वस्तुतः अब आपके जन्ममरण ही नहीं रहा, जन्म तो होगा ही नहीं, और जो आयुक्षय है उसका नाम हम मरण क्यों कहें ? मरण तो वह है जिसके बाद जन्म होता हो। प्रभुका उस आयुक्षयका नाम निर्वाण है। जिसका जन्म नहीं, जिसका मरण नहीं। जिसके विरागता प्रकट हुई, सर्वज्ञता प्रकट हुई वह तो मनुष्य से ऊँचा उठा हुआ जीव है। ऐसे हे जिनेन्द्र ! भले ही लोग आपको अपनी ही जातिका मान लें, लेकिन आपमें तो परमा-त्मत्व प्रकट हुआ है, आप मनुष्यतासे अतीत हो गए हैं।

> स्वमातुरिह यद्यपि प्रभव इष्यते गर्भतो,
> मलैरनुपसंप्लुतो वरसरोजपत्रेऽम्बुवत् ।
> हिताहितविवेकशून्यहृदयो न गर्भेऽप्यभूः,
> कथं तव मनुष्यमात्र सदृशत्वमाशङ्क्यते ॥२६॥

(७६) प्रभुके मनुष्यमात्रसदृशताकी शंकाका निराकरण—

हे जिनेन्द्रदेव ! यद्यपि आपने जब जन्म लिया था तो अपने माता-पितासे आपकी उत्पत्ति हुई तो आप गर्भमें तो थे, लेकिन उस गर्भ अवस्थामें आप मलोंसे लिप्त न थे। जैसे गर्भावस्थामें जो बच्चा पेटमें होता है वह मलोंसे ढका हुआ रहता है, उसके देहके चारों तरफ झल्लीसी लगी रहती है, लेकिन आप जब गर्भमें थे तो मलोंसे आप उपद्रित थे। जैसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उत्कृष्ट कमलपत्रमें बिन्दु रहा करते हैं, इसी तरह हे प्रभो ! माताके गर्भमें आप अलिप्त रहते हैं। जैसे कमलपत्रमें जल-बिन्दु रख दिया तो वह पुद्गल ही तो है, वह यहाँ वहाँ डोलता ही रहता है। वह पत्तेसे उपद्रवित नहीं है, ढका हुआ नहीं है, किन्तु जैसे वह बूँद मणिरत्नकी तरह लग रही है, इसी तरह गर्भ अवस्थामें रहकर भी आप ऐसे मणिरत्नकी तरह निर्मल रहे।

तो देखिये—मनुष्योंसे विलक्षण बात है ना आपमें। सिद्धान्तमें मनुष्यगति बताया है, उस ओरसे बात नहीं कही जा रही है, किन्तु एक प्रभुस्तवनमें इन सब मनुष्योंसे विलक्षणताका स्तवन किया जा रहा है कि आप एक विलक्षण अनन्य पुरुषोत्तम हो। दूसरी बात देखिये—गर्भमें जो बच्चा होता है उसे कुछ हित अहितका विवेक रहता है क्या ? वहाँ तो क्या, गर्भसे निकलनेके बाद भी कितने ही दिनों तक उसे हित अहितका विवेक नहीं जगता। बच्चोंको देखा होगा, अगर आगकी कोई डली पड़ी हो तो कहो उसे भी उठा ले, कहो कोई मलकी कणिका पड़ी हो तो उसे उठाकर मुखमें धर ले। उसे कुछ हित अहितका विवेक रहता है क्या ? लेकिन आप जब गर्भमें थे तब भी हित अहितका विवेक था। यह कितनी ऊँची बात है ? कैसे कहा जाय कि आप मनुष्य हो ? आप तो प्रारम्भसे ही मनुजतासे अतीत रहे आये हो। प्रभुके गर्भ

अवस्थामें भी तीर्थंकरोंके गर्भ अवस्थामें भी अवधिज्ञान रहता है। अवधिज्ञान कितना ऊँचा ज्ञान है ? यहाँ जिस जीवको अवधिज्ञान हो, श्रावकको हो, मुनिको हो तो कैसे उत्कृष्ट ज्ञान समझा जाता है यहाँ ? कैसे बता दिया इसने हजार मीलकी बात या दूसरे द्वीपकी बात या हजार वर्ष पहिलेकी बात ? तो आगे पीछेकी, दूरकी बातको स्पष्ट जान लेना, ऐसा ज्ञान जहाँ हो वहाँ क्या सावधानी न कही जायगी ? गर्भमें आये, मगर जीवके साथ तो जीवका ही ज्ञान है, सावधानी बनी हुई है, तो हे प्रभो ! आप गर्भमें भी हित अहितके विवेकसे शून्य नहीं रहे। यह बात गर्भावस्था तककी बतायी जा रही है। गर्भावस्थामें भी आपका हृदय हित अहितके विवेकसे रहित नहीं रहा। तब कैसे यह आशंका की जाय, कैसे यह बात विचारी जाय कि आप तो मनुष्यमात्रके सदृश हो ?

न मृत्युरपि विद्यते प्रकृतिमानुषस्येव ते,
मृतस्य परिनिर्वृतिर्न मरणं पुनर्जन्मवत्।
जरा च न हि यद्वपुर्विमलकेवलोत्पत्तितः,
प्रभृत्यरुजमेकरूपमवतिष्ठते प्राङ्‌ मृते ॥ २७ ॥

(७७) प्रभुकी जन्ममरणातीतता—

हे नाथ ! प्रकृतिसे आप यद्यपि मनुष्य हो तो भी आपकी मृत्यु नहीं है अथवा जैसे साधारण प्रकृतिसे जो मनुष्य है उनकी जैसे मृत्यु हुआ करती है, ऐसी मृत्यु आपकी नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

है। उसे निर्वाण कहते हैं। आयुक्षयको भले ही पंडितपंडित मरण नामसे कहा गया है, पर उसे मरण क्यों नहीं कहते कि उसके बाद फिर जन्म नहीं होता है। जैसे अन्य लोगोंके मरण हुआ करते हैं वैसे आपके तो मरण भी नहीं है। तो जैसे कह दिया जाय कि मनुष्यमात्रके सदृश हो। आपका आयुक्षय होता है—यह बात सही है, लेकिन आयुक्षय होनेपर आपका निर्वाण होता है, मरण नहीं होता। जैसे कि जन्म नहीं होता। आपका अब जन्म नहीं होनेका। किसी कविने यह भावना भायी है कि हे प्रभो! अब मुझे माताका स्तन न चूसना पड़े याने माताका दूध न पीना पड़े। इन शब्दोंमें क्या जाहिर होता है कि मेरा अब कभी जन्म न हो।

(७८) जन्मकी अन्धरूपता—

जन्म होनेमें होता क्या है यहाँ प्रारम्भिक अवस्था में? वही अज्ञान अविवेक? फिर कुछ बढ़े, फिर कुछ सीखे, यह तो है मनुष्योंकी बात। बचपनसे फिर बालक बने, फिर जवान बने, जवान बनकर विषयोंमें प्रवृत्ति की, फिर वृद्ध हुए, पश्चाताप किया और फिर मरकर चल गए। किया क्या? कुछ नहीं किया। ऐसा चल रहा है इस मनुष्यका जीवन। एक पुरुषका भाई गुजर गया तो लोग आये उसकी सहानुभूति प्रकट करनेके लिए। तो किसीने उस भाईसे पूछा कि तुम्हारा भाई मरते समय क्या कर गया? उसका पूछनेका मतलब

http://www.jainkosh.org

यह था कि कौनसा दान पुण्य कर गए? तो वह भाई क्या उत्तर देता है—'क्या बतायें यार क्या कारोनुमाया कर गए? बी. ए. किया, सर्विस की, पेन्शन लिया अरु मर गए।' बस ऐसी ही बात सब लोग अपनी-अपनी लगायें। कुछ थोड़ा बहुत पढ़ा-लिखा, काम धन्धा सीखा, कुछ काम-धंधा किया, विषय भोगे, बूढ़े हुए, शिथिल हुए, पराधीन हुए व मर गए। किया क्या? अरे करनेकी बात तो यह है कि आत्मस्वरूपका बोध हो, आत्मा ही निरन्तर दृष्टिमें बसाये रहें, आत्मस्वरूप की ही बराबर सुध रखें, मोह ममताको दूर करें। ऐसा अगर जीवन व्यतीत हो तो उसका अर्थ है कि हाँ दुर्लभ मानवजन्म पाया और कुछ करके गए, लेकिन पशु-पक्षियोंकी भाँति बस जन्म लिया, विषय सेया और मर गए, तो बताइये क्या कर गए? यह है इस मनुष्य जीवनकी हालत। प्रभु तो जन्ममरण से रहित हैं। उनके जन्म ही नहीं होता।

(७९) समाधिमरण, प्रभुभक्ति व आत्मदर्शनकी भावनामें हित—

भैया! किस बातमें हित है सो बताओ? हम आपका हित इसमें है कि फिर जन्ममरण न लेना पड़े। वहाँ तो लोग जन्म लेनेमें खुशी मानते, पर यह तो बतलाओ कि जीवका हित जन्मदशामें अधिक हो सकता है या मरणदशामें? मरण समयमें समाधिभाव किया जा सकता है, पर किसी जन्मके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समयमें समाधिभाव होता है क्या ? समाधि ही तो कल्याण का रूप है। समाधिमरण तो होता है, पर समाधि जन्म नहीं होता। जन्मकी अपेक्षा मरणका महत्त्व अधिक है। मरण अधिक हितकारी है, जन्म हितकारी नहीं है। तो अब जिंदगी से चल रहे हैं, उम्र बढ़ रही है, इस बातका शोक न करें कि अब मेरा मरण निकट आ रहा है, क्या करें ? अरे शोक यों न करें कि मरण समयमें हम बड़ा काम बनायेंगे और अपने हितका उपाय बना लेंगे। मेरेको एक कितना सुन्दर अवसर आ रहा है ? जन्मका अवसर तो बुरा है। वहाँ खेद होना चाहिए, मरणकाल अच्छा है। तो यहाँ उत्साही रहना चाहिए। इस मरणसे तो मेरे हितका सम्बन्ध है। मैं अपने समान भावको रखूं, संकल्प-विकल्प, रागद्वेष, मोह, अज्ञान इन सबकी तिलांजलि कर दूँ और आत्माका जो विशुद्ध चैतन्य ज्ञानानन्दस्वरूप है उस स्वरूपको अपनी दृष्टिमें रखें तो यह मेरा भला ही होगा। उसका क्या खेद मानना ?

तो खेदकी बात है जन्म। प्रभुके अब जन्म नहीं होता। जिसके बाद जन्म हो उसका नाम है मरण। प्रभु जन्म मरणसे अतीत हो गए। फिर कैसे कहा जाय कि हे नाथ ! तुम मनुष्यमात्रके सदृश हो, मनुष्यतासे अतीत हो और आप परम पुरुष हो ? यहां आचार्यदेव प्रभुके स्तवनमें सब ओरका वर्णन करते हुए प्रभुस्वरूपकी सुध बना रहे हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

मत-मतान्तरोंकी तुलना करके प्रभुके अनन्त ज्ञानादिक गुणोंकी सुध करके और यहां मनुष्यमात्रसे उठे हुए ऊँचे परमात्मस्वरूपको निरख करके जिस किसी भी विधिसे भगवानके स्वरूपमें भक्ति उत्पन्न हो, निर्दोषता जाहिर हो, बस वही सच्ची भक्ति कहलाती है। हे प्रभो ! आप वीतराग हैं, सर्वज्ञ हैं, निर्दोष हैं। आपका जो शरण गहते हैं, जो आपके गुणोंकी स्तुति करते हैं, वे समस्त कर्मोंका विनाश कर सकते हैं। ऐसा हमारे कल्याणका साधनभूत जिनेन्द्रदेवका स्मरण है वह मेरे रहा करे और अपने आत्माके सहजस्वरूपका स्मरण रहा करे। ये दोनों ही बातें हम आपके लिए शरण हैं एक तो प्रभुभक्ति और दूसरी आत्मस्वरूपकी सुध।

परैः कृपणदेवकैः स्वयमसत्सुखैः प्रार्थ्यते,
सुखं युवतिसेवनादिपरसन्निधिप्रत्ययम्।
त्वया तु परमात्मना न परतो यतस्ते सुखं,
व्यपेतपरिणामकं निरुपमं ध्रुवं स्वात्मजम् ॥२८॥

(८०) प्रभुके निरुपम, ध्रुव, स्वाधीन आनन्दका स्तवन—

अनेक मत मतान्तरोंके मर्मके ज्ञाता श्लोक वार्तिक, अष्टसहस्री आदिक ग्रन्थोंके रचयिता, अबसे करीब ५००-७०० वर्ष पूर्व हुए विद्यानन्दि स्वामीने पात्रकेशरिस्तोत्र रचकर एक ऐसा प्रकाश दिया है कि जिससे यह दृढ़तापूर्वक ज्ञान होता है कि अरहंत जिनेन्द्रदेव वीतराग सर्वज्ञ ही क्यों पूज्य हैं ? इस

छन्दमें यह कह रहे हैं कि कुछ दूसरे लोगोंने, जो कि आज देवके रूपमें मान्य हो रहे हैं, वे स्वयं कृपण थे, लोभी थे, जिनके स्वयं सुख न था, उन्होंने स्त्रीसेवन आदिक परपदार्थोंके समागमसे उत्पन्न होने वाले सुखोंकी प्रार्थना की। जैसे कि एक कथानकमें प्रसिद्ध है कि कुछ थोड़ीसी ऋद्धियोंके धनी होकर भी एकने पर्वतराजाकी पुत्रीके साथ विवाह करनेकी इच्छा की। विवाह किया, भ्रष्ट हुए। परन्तु हे प्रभो ! आपने कभी भी परसन्निधिप्रत्ययक वाञ्छा नहीं की, अब तो आप परमात्मा हैं, शुद्ध ज्ञानमय हैं, अब तो सुख मौजका सवाल ही क्या ? अब तो आप विशुद्ध ज्ञानानन्दमय हैं।

ऐसा क्यों हुआ कि हे प्रभो ! आपका जो सुख है वह परिणमनसे अतीत है अर्थात् उसका बदलना नहीं होता। जो अनन्तसुख आपने पाया, आत्मामें आत्मसेवित जो अनन्त सहज आनन्द आपको मिला वह अब बदलेगा नहीं, अर्थात् उस सुखके बजाय अब अन्य कुछ बात आ जाय, ऐसा न होगा। वह सुख निरुपम है जो सुख आपको मिला है। जो सुख आपको मिला है, ध्रुव है, सदाकाल रहने वाला है और अपने आपसे उत्पन्न हुआ है। इस जीवको क्लेश यही तो है कि यह परकी आशा रख रहा है, परसे सुखकी आशा कर रहा है। पर पर है, अपने अधिकारकी चीज नहीं है, इसलिए अनेक विडम्बनायें होंगी और तब तक जीवको दुःखी होना ही

http://www.jainkosh.org

पड़ेगा। कैसा एक निर्णय है ज्ञानीका कि ज्ञानमात्र मुझ आत्मतत्त्वसे अतिरिक्त अन्य किसीसे भी मेरा सम्बंध नहीं है। मैं किसीको क्या वश करूँ, किसीसे क्या आशा करूँ, किसीको क्या अपनाऊँ, किसीको क्या चित्तमें बिठाऊँ ? मेरा मैं ही हूं, मेरा ज्ञानस्वरूप मेरे ज्ञानमें बसे, इससे बढ़कर उत्कर्ष वाली स्थिति और कुछ नहीं हो सकती, ऐसा आपने किया, और जो अनन्तआनन्द पाया वह स्वात्माधीन है, ध्रुव है, निरुपम है, कभी मिटने वाला नहीं है। यही वजह है कि आपने अन्य कुछ भी परप्रत्यय चीज नहीं चाही।

पिशाचपरिवारितः पितृवने नरीनृत्यते,
क्षाद्रुधिरभीषणद्विरदकृत्तिहेलापटः ।
हरो हसति चायतं कहकहाट्टहासोल्वणं,
कथं परमदेवतेति परिपूज्यते पण्डितैः ॥ २६ ॥

(८१) अटपट नर्तक मांसभक्षी जीवोंमें परमदेवत्वकी प्रसिद्धि को जानेपर आश्चर्य—

यहांका कोई मनुष्य यदि भूत प्रेत जैसे कुरूप, कुढंगे, दुर्विचार वाले भूत लोगोंके साथ रहकर मरघटमें बराबर नाचते रहनेका काम करे तो क्या उसे कोई मान लेगा कि यह भगवान है अथवा जो नाना प्रकारके कहकट्टहासोंसे बूझता ही रहे, जो नाना हिंसा प्रसारोंसे रुधिर बह रहे हैं, ऐसे संगमें जो एक अपनी वेला कर रहे, ऐसा कोई आचरण करे तो उसे

Version 1

कोई देवता मान लेगा क्या ? लेकिन आश्चर्य है कि अच्छे-२ इस लोकमें समझे जाने वाले पंडितोंने भी उसे परमदेवता माना है। अब इसके मुकाबलेमें जिनेन्द्रदेवकी वृत्ति देखो— कैसी शान्त नासाग्रदृष्टि है। कहीं आने जानेका नाम नहीं। पद्मासनसे विराजे हैं ? कहीं कुछ करनेका काम नहीं। हाथ पर हाथ रखे हुए हैं, अन्तर्दृष्टि करके प्रसन्न हैं और अब तो परमात्मा हैं तो अनन्त आनन्दका अनुभव कर रहे हैं। कहाँ तो यह स्थिति, जिसे कहना चाहिए देवता और कहाँ यह स्थिति कि मरघटमें नाचें, भूत-प्रेत, पिशाचोंका परिवार बनायें और ताण्डव नामका नृत्य करें, और बड़े बड़े उच्च स्वरोंसे हास्य करें, फिर भी पंडितजन उन्हें परमदेवता मानें तो मानें, पर नाथ मेरी दृष्टि तो विशुद्ध बन गई है। परमदेव तो आप ही वीतराग सर्वज्ञदेव हो।

> मुखेन किल दक्षिणेन पृथुनाऽखिलप्राणिनां
> समत्ति शवपूतिमज्जरुधिरांत्रमांसानि च।
> गणैः स्वसदृशैर्भृशं रतिमुपैति रात्रिंदिवं
> पिवत्यरि च यः सुरां स कथमाप्तताभाजनम् ॥३०॥

(८२) मांसभक्षी मदिरापायी पुरुषोंमें आप्तताभाजनत्वका अभाव—

कोई अपने बड़े मुखसे सर्व प्राणियोंके सबके अपवित्र मांस, मज्जा, रुधिर आदिकका भक्षण करे और अपने

ही समान जो अपने हो गणके लोग हैं उनके साथ प्रेम करे, रात-दिन जो मदिराको पिये, ऐसे पुरुषका चित्रण तो कीजिए। क्या वह पुरुष भगवान कहलाने लगेगा ? अरे वह तो इस लोकके सज्जन कहलाने वाले पुरुषोंके लायक भी नहीं कहे जा सकते ? लेकिन खेद है कि कुछ अविवेकी जन ऐसे-ऐसे चरित्र वाले मनुष्योंको भी आप्त कह देते हैं। मिथ्यात्वका कितना घोर अँधियारा इन जीवोंपर छाया है कि जो परमात्मत्वका कुछ निर्णय नहीं कर पा रहे हैं और भगवानके नामपर किसी भी चरित्रकी भक्ति करते हैं, और यदि कोई कुछ शंकाकी बात कहे तो उसके उत्तरमें भी वे कुछ न कुछ सोच लेते हैं। भगवानकी लीला है, वे तो सदा शुद्ध हैं, उनकी लीलाका कौन मर्म पा सकता है ?

तो ऐसे-ऐसे उत्तर भी गढ़ लेते हैं, लेकिन जिन्होंने परमात्मस्वरूपका निर्णय नहीं किया वे परमात्माको क्या जानें ? जैसे वस्तुस्वरूपके निर्णयके लिए स्वचतुष्टयसे अस्तित्व और परचतुष्टयसे नास्तित्व जानना आवश्यक है, इसी तरह जिसने एक परमात्माके स्वरूपका निर्णय कर लिया कि परमात्मा कौन हो सकता है, उसके स्वरूपका वर्णन करना जो नहीं हो सकता है, किन्तु संसारमें प्रसिद्धि कर रखी है वहाँ परमात्मत्वका विच्छेद करना, ये दोनों ही बातें हमारी प्रभुभक्तिके लिए साधक हैं। इसे कहते हैं अन्ययोग व्यवच्छेद। वैसे तो भक्ति स्तवनमें जितना स्वरूपवर्णन किया जाता है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

वह सब अन्ययोग व्यवच्छेदको लिए हुए होता है। इसमें द्वेष की बात क्या है? विशेषणका स्वरूप ही यह है कि जो अन्य-योग व्यवच्छेद कर दे, वैयाकरणोंसे पूछो, नैयायिकोंसे पूछो, दार्शनिकोंसे पूछो, साधारण जनोंसे पूछो—विशेषणकी तारीफ क्या है? अन्ययोग व्यवच्छेदक होता है विशेषण।

जैसे कहा कि नील कमल। तो इसका अर्थ हुआ कि नीला कमल, न कि पीला लाल आदिक। विशेषणकी तारीफ ही यह है। ऐसे बड़े सीधे शब्दोंमें प्रभुकी स्तुति की—जो मोक्षमार्गका नायक है, कर्मभूभृतका भेत्ता है, विश्वतत्त्वका ज्ञाता है, उस आप्तकी मैं वन्दना करता हूं। अन्ययोग व्यव-च्छेद हो गया कि जो मोक्षमार्गका नेता नहीं, जो कर्मपर्वतका भेदनहार नहीं, जो विश्वतत्त्वका ज्ञाता नहीं वह आप्त नहीं हो सकता। तो इसी अन्ययोग व्यवच्छेदकी विधिसे यह स्त-वन किया जा रहा है। इन्हीं आचार्यदेवने आप्तपरीक्षा ग्रंथ बनाया है। आप्त विच्छेदका बहुत विस्तृत वर्णन किया है। इस छन्दमें कह रहे हैं कि जो रात-दिन मांस खाये, मदिरा पिये और मद्यमांसका सेवन करने वालोंसे प्रेम करे उसमें आप्तपनेका चिन्ह कैसे हो सकता है? अनेक जीव हैं, लेकिन उनको लक्ष्यमें लेकर नहीं कहा जा रहा, किन्तु जो वृत्ति तो रखते हों ऐसी गंदी और खुद अपनेको खुदके या दूसरोंके द्वारा भगवान नामसे प्रसिद्ध कराते हों या ऐसेमें प्रसिद्ध हो

http://www.jainkosh.org

गए हों तो उसका यहाँ व्यवच्छेद चल रहा है।

अनादिनिधनात्मक सकलतत्त्वसंबोधनं
समस्त जगदाधिपत्यमथ तस्य संतृप्तता।
तथा विगतदोषता च किल विद्यते यन्मृषा
सुयुक्तिविरहान्न चाऽस्ति परिशुद्धतत्त्वागमः ॥३१॥

(८३) प्रभुकी स्वरूपसंतृप्तता व विगतदोषताके कारण वाणीप्रमाणता—

हे प्रभो! उसका ही पुनीत आगम परमशुद्ध माना जायगा जैसा कि प्रवाह अनादिनिधन चला आया हो, वैसा ही कहा जा रहा हो। जहाँ समस्त तत्त्वोंका सम्बोधन हो, जिस पुरुषके समस्त जगतपर आधिपत्य हो, देखो अतुल आनन्द भी उसके है। आनन्दके दो ही तो वास्तविक साधन हैं—ज्ञान और आधिपत्य। इस लोकको दृष्टिसे बतला रहे हैं। यही बात प्रभुमें पायी जा रही है। यहाँ तो लोग चाहते हैं, वहाँ सब कुछ बिना चाहे बन रहा है. यही तो अन्तर है, पर प्रभु का समस्त जगतपर आधिपत्य है और सकल तत्त्वका परिज्ञान है, इसी कारण इनके परमतृप्तता है. और इसका यह भी कारण है कि उनके किसी प्रकारका दोष नहीं है। जिस पुरुषका जीवन निर्दोष है उस पुरुषके बहुत बड़ी तृप्ति रहा करती है, और जो धनिक भी है, समाजमें परिचय वाला भी है, किन्तु स्वयंमें यदि दोष है दुराचारका, यशोवांछाका तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वह निर्दोष नहीं कहला सकता।

हे प्रभो ! आप निर्दोष हैं, इसलिए आपमें तृप्तता है। जहाँ यह निर्दोषता नहीं है वह आगम भी शुद्ध नहीं कहा जा सकता है। कुछ दार्शनिक इस अपौरुषेय आगमको प्रमाण मानते हैं। और उस आगममें बताते हैं कि सकल तत्त्वोंका परिज्ञान कराने वाला यह ही है, कोई सर्वज्ञ अलगसे नहीं है और भावना नियोग आदिक विधियोंसे बताते हैं कि यह आगम ही समस्त जगतपर आधिपत्य रखता है। बात तो ठीक कहते हैं कि वेद अपौरुषेय है, वेद अनादिनिधन है, वेद समस्त तत्त्वोंका सम्वेदन करने वाला है, और वेदका समस्त जगतपर आधिपत्य है। वह वेद क्या है ? यही केवलज्ञान। विद् ज्ञाने धातु है जिसका वेद बना, याने जो जाने उसका नाम वेद है। जो जाननहार स्वरूप है वह वेद, वह केवलज्ञान, वही तो वर्णन करता है जो अनादिसे अनन्त तीर्थंकर करते आये। सकल तत्त्वोंका परिचय रखता है और समस्त जगतपर आधिपत्य है, निर्दोष है, और उनके कहे हुए आगम में भी यही बातें पायी जाती हैं। हे प्रभो ! आपकी वाणी निर्दोष है। जो उसके अनुसार चलता है वह संसारसे पार हो जाता है।

कमण्डलुमृगाजिनाक्षवलयादिभिर्ब्रह्मणः,
शुचित्वविरहादिदोषकलुषत्वमभ्यूह्यते।

भय विघृणता च विष्णुहरयोः सशस्त्रत्वतः
स्वता न रमणीयता च परिमूढ़ता भूषणात्॥३२॥

(८४) कमण्डल, मृगछाला, अक्षवलय धारण करने वाले पुरुषोंमें अशुचित्वकी सिद्धि होनेसे देवत्वशून्यताकी सिद्धि—

कभी भगवानरूपसे मानने वाली बात एक थी। तो जैसे यहाँ भी कोई एक घटना हुई हो और उसे किसीने किसी को सुनाया, फिर दूसरेने तीसरेको सुनाया, उस तीसरेने अन्य बहुतसे लोगोंको सुनाया। ऐसे ५०-६० कानोंसे वह बात उतर जाय तो पहिले कानसे सुनी हुई बातमें और ५०वें कान से सुनी हुई बातमें बहुत अन्तर मालूम पड़ेगा। ऐसे ही यहाँ भी कोई शब्द तो एक है, पर उसके अर्थ अनेक हैं तो अर्थोंसे भी अन्तर हो जाता है। तो अन्तर होनेके ये दो कारण हैं— कोई बात कभी पहिले कही थी और हजार वर्ष गुजरनेके बाद जब वह बात लोगोंके सामने आती है तो उसमें जो अन्तर होता है। उस अंतरके दो कारण होते हैं—एक तो बहुत कानोंसे गुजरकर अन्तिम कानमें आयी, दूसरे एक शब्दके अनेक अर्थ हैं, तो अर्थ भी दूसरे-दूसरे लगते चले गए। तो अन्तर बहुत हो जाता है।

एक ऐसी ही घटना सुनी है सहारनपुरकी कि जिन दिनों हिन्दू मुस्लिम दंगा चल रहा था, उस समयकी बात

Report any errors at vikasnd@gmail.com

है—किसी लड़केके पास एक खोटी चवन्नी थी, वह चलती नहीं थी। एक दिन किसी हलवाईकी दूकानपर चल गई। उसने एक आनेकी मिठाई खरीदी, तो हलवाईने तीन आने वापिस कर दिए तो वह खुश होकर खूब उछलता-कूदता यह कहता हुआ जा रहा था कि चल गई, चल गई...., लोगोंने समझा कि गोली चल गई। तो सभी लोग अपनी-अपनी दूकानें बन्द करके अपने-अपने घरोंमें घुस गए। तो देखिये—इस तरहसे एक शब्दके अर्थ भी अनेक होते हैं भावके अनुसार, सो भी अन्तर आया। ऐसी दो बातोंके कारण अन्तर आज यह आ गया कि अनेक लोग भगवानको अनेक रूप मानने लगे। कभी बहुत पहिले एक ऐसा समय था कि समस्त प्रजा की दृष्टिमें भगवानका एक रूप था। जो कुछ जानते थे और जो न जानते थे उनके लिए भगवान कुछ भी न थे। यों होते होते अनेक बातें बदल गईं। अवसर्पिणी कालके प्रारम्भमें भगवान आदिनाथ सबसे पहिले हुए। वे चतुर्मुख थे, उनका चतुर्मुखपना तो सबने स्वीकार कर लिया, परचरित्र और तरहका रच लिया। वह ब्रह्मा थे याने तीसरे कालके बाद जो विडम्बना आयी, विपदायें आयीं उनका निवारण किया, अतएव ब्रह्मा कहलाये अथवा मोक्षमार्गका विधिका उन्होंने विधान किया, इसलिए ब्रह्मा कहलाये। तो नाम ब्रह्मा ही रहा, पर चरित्र और तरह हो गया।

http://www.jainkosh.org

तो इसी तरह आज जितने प्रकारके रागद्वेष रूपमें प्रभुके चरित्र बना दिये गये हैं, वे बनाये गये हैं। प्रभु तो रागद्वेषरहित सर्वज्ञ ही होते हैं। कमण्डल, मृगछाला, कंठी माला आदिकसे तो ब्रह्मात्री यह सिद्धि होती है कि उनमें पवित्रता न थी। रूप सजानेकी क्या जरूरत है प्रभुको ? प्रभु तो स्वयं पवित्र शुद्ध हैं, भक्त जनोंके लिए आदर्श हैं। प्रभुके कहाँ कमण्डल, कहाँ मृगछाला ? अरे वे तो परमात्मा हो गए, उनके अब ये दंद-फंद कहाँ रहे ? प्रभुको अनेक विडरूप मानकर लोग तो समझते हैं कि हम प्रभुको प्रशंसा करते हैं, मगर समझदारोंकी दृष्टिमें तो दोष और कलुषताकी प्रसिद्धि होती है।

(८५) शस्त्र व भूषण धारण करने वाले पुरुषोंमें भय, क्रूरता व अरमणीयत्वकी सिद्धि होनेसे उनमें देवत्वशून्यताकी सिद्धि—

लोगोंने प्रभुका स्वरूप रच दिया कि वे त्रिशूल रखते हैं, सुदर्शन चक्र आदि हथियार रखते हैं, तो ऐसा जो कोई प्रभु माना गया हो हथियार वाला, उससे क्या सिद्धि होती है ? हथियार रखने वालेके हृदयमें क्या बात बसी है ? समझने वाले लोग जानते हैं कि उसके हृदयमें दो बातें बसी हैं, भय और क्रूरता। जिसके भय हो सो हथियार रखे। जिसके दिलमें क्रूरता हो सो हथियार रखे। किसीको भय हो और क्रूरता हो, फिर भी कहा जाय कि यह प्रभु है तो यह कितनी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अज्ञानता भरी बात है ? तीसरा आश्चर्य देखो — लोग प्रभुको सजाते हैं, वस्त्राभूषण पहिनाते हैं। तो शायद उनके प्रभुमें स्वयं ही सुन्दरता व रमणीयता नहीं है तभी तो उनको इतना इतना सजानेकी जरूरत पड़ी। उनको सजानेका यही मूल उद्देश्य रहा होगा। शरीर तो गंदा ही है, नाकसे नाक बहती है तो भाई नाकके ऊपर चमचमाती हुई लौंग रख लो, इससे देखने वालोंका चित्त उस चमचमाहटको ओर हो जायगा और नाककी गंदगी उससे ढक जायगी। आजका जितना वस्त्राभूषण का व्यवहार है, ये रेशम नाइलोन आदिक जो कपड़े तड़क-भड़कके फैशनेबुल कपड़े चले हैं उनसे इस शरीरके सजानेकी आवश्यकता लोगोंको क्यों हुई ? इसीलिए तो कि यह शरीर महाघिनावना है, इसमें स्वयं कोई सुन्दरता, रमणीयता नहीं होती। ये प्रभु तो स्वयं रमणीक हैं। इनको सजानेकी आवश्यकता नही। ये भय और क्रूरतासे रहित हैं तब फिर इन्हें शस्त्र रखनेकी क्या जरूरत ? ये प्रभु तो स्वयं निर्ग्रन्थ स्वरूप हैं, अतः उनमें ही परमेष्ठिता है। जो स्वयं भय एवं क्रूरतासे ग्रस्त है उसको आप्त कैसे कहा जा सकता है ?

स्वयं सृजति चेत्प्रजाः किमिति दैत्यविध्वंसनं
सुदुष्टजननिग्रहार्थमिति चेदसृष्टिर्वरम् ।
कृतात्मकरणीयकस्य जगतां कृतिर्निष्फला
स्वभाव इति चेन्मृषा स हि सुदुष्ट एवाऽऽप्यते ॥३३॥

(८६) जीवसर्जक ईश्वरकी कल्पना करने वालोंके ईश्वरकी विडम्बनाका चित्रण—

लोगोंने यह प्रसिद्धि कर रखी है कि कोई एक ईश्वर जीवोंको बनाता है, संसारको रचता है तो किसीने कहा, प्रेरणा की तब रचा या स्वयं रच डाला ? काम करनेकी दो ही तो पद्धतियाँ हैं—खुद काम कर दे या दूसरेकी प्रेरणा हो तब काम कर दे। तो बताओ ईश्वरने जो इस जगतको रचा सो स्वयं रचा या किसीने ऐसी प्रेरणा की तब रचा ? कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि किसीने कहा तब रचा, जिसे कहते हैं कुन्दआन। तो मान लो किसीने कहा तो वह तो बिना रचे बन गया। उसमें रचनेकी बात कहाँ आयी ? खैर यहाँ यह स्वयं विकल्प रख रहे हैं कि स्वयं रचता है ईश्वर। यदि वह रचता है तो दैत्योंका वह विध्वंस करता है याने जो पुरुष हैं, धर्मात्माओंको या लोगोंको दुःखी करते हैं, ऐसे लोगोंका वह विध्वंस करता है। जब ऐसे लोगोंका विध्वंस करता तो फिर उन्हें रचता ही क्यों है ? यदि कहो कि वे लोग दुष्ट हैं तो उनको सजा देनेके लिए या सज्जनोंकी रक्षा करनेके लिए उनका विध्वंस किया जाता है तो सुनो—स्वयं रचा तो फिर उन दुष्टोंको क्यों रचा ? जो दुष्टोंको बनाये और फिर उनका विध्वंस करे, वह तो स्वयं रचने वाला था, स्वतंत्र था। खूब अच्छे-अच्छे रचता, खूब अपना मन खुश करता। जब उनका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

विध्वंस ही करना है तो फिर उनकी वह रचना ही क्यों करे ? यदि कहा जाय कि जो जैसा करता है उसको वैसा फल देना पड़ता है । अथवा वह पहिले तो रच ले अच्छे लोग पीछे उनको बिगाड़ ले तब उनका विध्वंस करना पड़ता है तो इसी तरह समझ लो कि जो जैसा करता है उसको वैसा फल देना पड़ता ।

तो ठीक है, जिसने जैसा किया उसे वैसा फल मिला तो स्वतंत्र तो न रहा, फिर किया ही क्या ? फिर तो जगत में कृति निष्फल है या उस ईश्वरके लिए बताओ कि उसने रचना किया क्यों ? यदि कहो कि जो उसे करना था सो कर लिया। अपने लिए ही सब कुछ कर लिया । उसका ऐसा भाव हुआ और किया । तो ऐसा जो भाव करे, जो दुष्टोंको बनाये, मारे, खुश रहे, ऐसा यहाँ किसीको कहा जाय तो उसे लोग प्रभु कहेंगे क्या ? उसे तो लोग दुष्ट कहेंगे । यदि कहो कि प्रभुका स्वभाव ही ऐसा है कि वह जगतकी रचना करता है तो वाह रे स्वभाव, किसीको पैदा करे, मारे, दुःख दे, यह तो कोई भली बात नहीं । यहाँ ही कोई लड़का अगर किसी को भला बुरा कहे, मारे, किसीको तकलीफ दे तो वह तो सभीकी निगाहसे गिर जाता है । इसी तरह यदि वह ईश्वर किसीको पैदा करे, दुःखी करे, मारे, किसीको राजा बनावे, किसीको रंक बनाये तो यह तो कोई ईश्वरत्वका स्वरूप नहीं

http://www.jainkosh.org

है । यहाँ तो वस्तुका ऐसा स्वरूप है कि प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है । उनका उत्पादव्ययध्रौव्य सब कुछ उनमें है । हे प्रभो ! आप कृतकृत्य हो, अनन्तज्ञान और अनन्तआनन्दमें लीन हो । आपके ये कोई खटपट नहीं हैं, इसलिए परमेष्ठिताका पद आपका ही है ।

प्रसन्नकुपितात्मनां नियमतो भवेद्दुःखिता,
तथैव परिमोहिता भयमुपद्रुतिश्चामयैः ।
तृषाऽपि च बुभुक्षया च न च संसृतिश्छिद्यते,
जिनेन्द्र ! भवतोऽपरेषु कथमाप्तता युज्यते ॥३४॥

(८७) प्रसन्न, क्रुद्ध, दुःखी, रोगी, भूखे, प्यासे, जन्ममरण करने वालेमें आप्तपना माननेकी अयुक्तता—

हे इन्द्रियविजय करके रागद्वेषपर विजय प्राप्त करने वाले वीतराग सर्वज्ञदेव ! आपको छोड़कर अन्य प्राणियोंमें आप्तपना कैसे युक्त हो सकता है ? जब कि देखा जा रहा है कि आपके सिवाय अन्य वह पुरुष जिसमें देवपनेकी प्रसिद्धि हुई है वह कभी प्रसन्न होता है, कभी क्रुद्ध हो जाता है । तो यह नियम है कि ऐसा यदि कोई पुरुष हो तो वह नियमसे दुःखी है, तभी तो वह कभी खुश हो गया, कभी क्रुद्ध हो गया । तो जो आत्मा प्रसन्न होते हैं, क्रुद्ध होते हैं उनमें दुःखीपना नियमसे सिद्ध होता है । और वे मुग्ध हैं किसीमें तब ही तो प्रसन्न होते हैं अथवा किसीसे वे विरोध रखते हैं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तब ही तो दूसरेपर क्रुद्ध हुए हैं। साथ ही कोई उन्हें रोग हो जाय, कोई कठिन घटना आ जाय तो उनके भय और उपद्रव भी देखा गया है। तभी वह तृष्णासे आकुल होता। जैसे किन्हींने बता डाला है कि कोई भगवान जंगलमें पहुंचे, वहां उन्हें प्यास लगी। तो उनका बड़ा भाई पासकी नदीमें पानी लेने चला गया। वहां जिस समय पानी भरनेके लिए वह भाई गया तो एक शिकारीने देखा कि वृक्ष नीचे यह कोई हिरण बैठा है, बस शिकारीने तीर मार दिया, भगवान का मरण हो गया। तो लोगोंने ऐसेको भी भगवान मान डाला। भला बतलाओ जिन लोगोंको क्षुधा, तृषा आदिकी वेदनायें हों, जो किसीके द्वारा मारे जायें उनको भगवान कैसे कहा जा सकता है ? अरे जिसके अभी शरीरकी परिपाटी चल रही है उसमें आप्तपनेकी बात कहना कैसे युक्त हो सकती है ?

कथं स्वयमुपद्रुताः परसुखोदये कारणं,
स्वयं रिपुभयार्दिताश्च शरणं कथं बिभ्यताम्।
गतानुगतिकैरहो त्वदपरत्र भक्तैर्जनै-
रनाथतनसेवनं निरपहेतुरङ्गीकृतम् ॥ ३५ ॥

(८८) उपद्रुत, भयभीत पुरुषोंमें आप्तपनेकी अयुक्तता—

जैसे यहां लोग किसी चीजको कहते हैं कि यह अच्छी है, यह बुरी है तो जब तक बुरे पदार्थोंपर निगाह न की जाय

तब तक किसी पदार्थके अच्छेपनेका निश्चय भी कोई कैसे कर सकेगा ? जैसे कुछ भी पदार्थ सामने है खाने पीनेके पदार्थ फल आदिक, उनमें कोई कहता है कि यह फल अच्छा है। कैसे कह दिया कि यह फल अच्छा है ? और फल उसके ज्ञानमें हैं कि ऐसे-ऐसे बुरे फल हुआ करते हैं, इसलिए यह फल अच्छा है। यदि केवल ऐसे ही फल होते जगतमें, बुरे फल होते ही नहीं जगतमें, तो उसे कौन अच्छा कहता ? है सो है। अच्छा और बुरापन, समीचीनता और विपरीतता ये अपेक्षासे निर्णीत किए जाते हैं। सच्चे देव भगवान वीतराग सर्वज्ञदेव ही हैं। इसका निर्णय भी इसी ढगसे दिया जा रहा है कि इसको छोड़कर अन्य पुरुषमें देवत्वकी प्राप्ति नहीं पायी जाती है। जो स्वयं उपद्रवित है, दूसरोंके द्वारा सताये गए हैं वे दूसरेके सुख देनेमें कारण कैसे हो सकते हैं ?

जैसे एक कथानक है कि जब भस्मासुरकी इच्छा हुई कि मैं पार्वती देवीका हरण कर लूं तो उसने बड़ा तपश्चरण किया। उसके तपश्चरणसे देव प्रसन्न हुए और वरदान दिया कि जो चाहो मांग लो—तो उस भस्मासुरने यह वरदान मांगा कि हम जिसके सिरपर अपना हाथ रख दें वह भस्म हो जाय। मिल गया वरदान। अब उसने देवको ही भस्म करने की चेष्टा की जिससे कि पार्वती उसे (भस्मासुरको) मिल जाय। तब वे देव भागकर विष्णुके पास आये, सारा हाल कह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सुनाया । तो विष्णुने उपाय रचा देवको बचानेका । स्वयं ही विष्णुने पार्वतीका रूप बनाया और भस्मासुरके सामने आये, भस्मासुरसे कहा कि देखो—हम तुम मिलकर ताण्डव नृत्य करें, ताण्डव नृत्यमें तुम अपने सिरपर हाथ रखकर नृत्य दिखाओ । आखिर भस्मासुरने सिरपर हाथ रखा और स्वयं ही भस्म हुआ । तो जो स्वयं उपद्रवित हो या दूसरोंके द्वारा सताया जावे वह प्रभु कैसे कहा जा सकता है ? जो स्वयं ही शत्रुके भयसे पीड़ित हो वह दूसरेके लिए शरण कैसे हो सकता है ?

परंपरासे चली आयी हुई कहावतसे हे प्रभो ! आपको छोड़कर अन्य पुरुषोंमें भक्तजनोंने देवत्वकी प्रसिद्धि कर रखी है, ठीक है । भक्त जन जो भी अनायतनका सेवन करते हैं, जो धर्मके साधन नहीं हैं उनका सेवन क्या हुआ ? उन्होंने नरक जानेका हेतु अंगीकार कर लिया । चाहिये क्या आत्माको ? शान्ति । शान्तिका सम्बंध है ज्ञानकी केवलताके साथ । रागद्वेषरहित ज्ञान हो वहाँ शान्ति है । तो ऐसी शान्ति चाहने वालोंको उपासना करनी चाहिए रागद्वेषरहित ज्ञानपुञ्जकी । ऐसा रागद्वेषरहित ज्ञानपुञ्ज जो हो वही है भगवान, जिसकी उपासनासे अशान्ति दूर होती और शान्ति प्राप्त होती है ।

सदा हननघातनाद्यनुमतिप्रवृत्तात्मानं,
प्रदुष्टचरितोदितेषु परिहृष्यतां देहिनाम् ।

अवश्यमनुबध्यते दुरित बन्धनं तत्त्वतः ।
शुभेऽपि परिनिश्चितस्त्रिविधबन्धहेतुर्भवेत् ॥ ३६ ॥

(८६) कुचारित्री, हिंसाद्यनुमतिप्रवृत्त जनोंमें आप्तपनेकी अयुक्तता—

जो पुरुष सदा मारने काटने दुःखी करनेकी वृत्ति रखता हो, स्वयं मारे और अग्रणी बने, ऐसा जो कोई पुरुष हो अथवा दुष्ट चर्चा करनेमें जो हर्ष मानता हो, चोरीमें खुश, कुशीलमें खुश, सखियोंकी मजाकमें खुश होनेकी जिसकी वृत्तियाँ हो रही हों तो आप बतलाओ उसके पापका बन्धन हुआ कि नहीं ? अवश्य ही पापका बन्धन होगा । ऐसा चरित्र जिसका हो उसके पापका बन्धन है । प्रभुता तो आये कहाँसे ? प्रभुता तो वहाँ ही सम्भव है जहाँ परम उपेक्षा है, ज्ञानका विशुद्ध आस्वाद है, जहाँ संकल्प विकल्पका अत्यन्ताभाव है, ऐसे परमात्माओंकी भक्त जन स्वयं ही उपासना करते हैं । उनकी ओरसे न कोई संकेत है, न व्यवहार है, न कहीं आने-जानेकी प्रेरणा है, किंतु स्वयं भक्त जन भी तो शांति चाहते हैं, स्वयं ज्ञानवान है, ज्ञानसे उनका निर्णय है कि रागद्वेषरहित ज्ञानपुञ्जकी उपासना ही वास्तविक शरण है तो वे स्वयं ही अपनी शान्तिके अर्थ प्रभुकी उपासना करते हैं । ज्ञानी पुरुष भगवानकी उपासना भगवानके प्रेमसे नहीं करते, किन्तु अपनी विभावविपत्तियोंके विनाशके लिए करते हैं । जैसे कोई गर्मीका

Version 1

सताया हुआ मुसाफिर पेड़के नीचे बैठता है तो पेड़के प्रेमसे नहीं बैठता है, किन्तु उस गर्मीको दूर करनेके नियतसे बैठना है। इसी तरह जो भक्त जन प्रभुकी उपासना करते हैं वे कोई रिश्तेदारीसे नहीं करते, स्वयं संसारदु:खमें पड़े हैं और स्वयं यह निर्णय कर लिया कि संसार दु:खका संताप रागद्वेषरहित ज्ञानपुञ्जकी आराधनासे ही दूर हो सकेगा, इसलिए वीतराग सर्वज्ञदेवकी उपासना करते हैं। तो जो संसारी जनोंकी क्रीड़ाके माफिक क्रियायें करता हो, कृतकारित अनुमोदनासे हिंसामें प्रवृत्त होता हो, ऐसे पुरुषके तो पापका ही बन्धन है, उनसे कुशलताकी क्या आशा की जा सकती है ?

विमोक्षसुखचैत्यदानपरिपूजनाद्यात्मिका:,
क्रिया बहुविधासुभृन्मरणपीडना हेतव:।
त्वया ज्वलितकेवलेन न हि देशिता: किं नु,
तास्त्वयि प्रसृतभक्तिभि: स्वयमनुष्ठिता श्रावकै: ॥३७॥

(९०) भक्तोंकी भक्तिमें स्वयं अनुष्ठित नाना क्रियायें—

लोग प्रभुभक्तिमें पूजा, विधान आदिक अनेक प्रकार की क्रियायें करते हैं। सोचनेपर कुछ ऐसा लग रहा कि भक्ति के प्रसंगमें जिसमें कि कुछ जीवोंकी हिंसा भी सम्भव है ऐसी क्रियायें श्रावक जनोंने की है, उनमें ऐसा भक्तिका प्रसार हुआ है तो एक जिज्ञासा यह हुई कि भगवानने इन श्रावकोंसे कहा है क्या कि तुम इस तरह फूल लावो, फल लावो अथवा थाली

भरो, आग जलाओ या इस तरहसे मन्दिर बनवाओ, इस तरहसे भींत चिनवाओ, क्या इस तरहके अनेक कार्य जिनमें कि जीवहिंसा सम्भव है, उन्हें भगवान करनेको कहते हैं क्या ? इस विषयमें यह भान कर रहे कि हे प्रभो ! आपके तो एक विशुद्ध केवलज्ञानका उदय हुआ, आपने उन क्रियावोंका उपदेश नहीं किया, किन्तु स्वयं भक्तिका प्रसार जिनमें हुआ, ऐसे श्रावक जनोंने स्वयं पूजा, विधान, भक्ति आदिककी ये सब क्रियायें कीं। यहाँ प्रभुकी निर्दोषताको भक्तिमें आचार्यदेव यह कह रहे हैं कि प्रभुको क्या पड़ी है यहाँ वहाँकी बातें अथवा आरम्भ परिग्रहकी बातें करनेको ? वे तो अपने ज्ञानानन्द स्वरूपमें लीन हैं, मगर श्रावकोंको ऐसे ज्ञानानन्द पुञ्जके प्रति भक्ति जगी है, इसलिए अपनी योग्यताके माफिक वे भक्ति प्रदर्शित करते हैं। कोई पुरुष, भक्त कुछ विरक्तचित्त हैं और कुछ विवेक रखते हैं कि हिंसा न हो, वे फूल न चढ़ाकर चावल आदिकसे ही पूजन कर लेते हैं। कोई पुरुष जो कि अनेक मायाजालमें फंसे हैं और जिनकी रागरहित होनेके लिए अभी विशेष तैयारी नहीं है, और भक्त जन हैं वे फल फूल आदिकसे पूजन करते हुए अनेक तरहकी क्रियायें लोग करने लगे हैं। उन भक्तोंने स्वयं अपने आप अपनी ओरसे भक्तिके प्रसारमें क्रियायें कीं, किन्तु आरम्भ और हिंसा वाली बातोंका हे प्रभो ! आपने उपदेश नहीं दिया। आप इतने निर्लेप, ऐसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

वीतराग हो कि अपने ज्ञानानन्दके अनुभवके अतिरिक्त अन्य बातोंमें आपका उपयोग नहीं जाता।

त्वयात्वदुपदेशकारिपुरुषेण वा केनचित्।
कथंचिदुपदिश्यदिश्यते स्म जिन चैत्यदानक्रियाः।
अनाशकविधिश्चकेशपरिलुंचनं चाऽथवा,
श्रुतादनिधनात्मकादधिगतं प्रमाणान्तरात् ॥६८॥

(६१) भक्तकी प्रभुके प्रति कृतज्ञता—

ऊपरके छन्दमें बताया गया था कि चैत्यदान, पूजन आदिक क्रियायें भगवान आपने अपने मुखसे नहीं कहीं। तो अब विकल्प रूपमें इस छन्दमें यह कह रहे हैं अथवा आपने कहा या आपमें उपदेशका फैलाव करने वाले अन्य गणधर आदिक पुरुषोंने कहा या किसीने किसी प्रकारसे चैत्य, दान आदि क्रियाका उपदेश किया हो, पर श्रावकजन अपनी परिस्थितिमें रहकर अपने हितका कुछ साधन कर लिया करते हैं। हमारी यह कल्पना है कि हमने सब इस अनादि परम्परा से चले आये हुए श्रुतसे जो कि एक प्रमाणान्तर रूप है प्रमाण तो साक्षात् आप हैं। दूसरा प्रमाण हैं आगम, सो आगमसे यह सब जाना, अनासक्त रहना, निर्ग्रन्थवृत्ति होना, उपवास होना, केशलुञ्चन होना आदिक समस्त विधियाँ अनादिनिधन अर्थात् परम्परागत प्रमाणान्तररूप श्रुतसे समझा है।

इस छन्दमें जो कुछ कहा जा रहा है उसमें अनेक

http://www.jainkosh.org

भावोंका मिश्रण है। प्रभु केवलज्ञानी हैं। उनकी दिव्यध्वनि खिरती है, उसे गणधरदेव झेलते हैं। तो प्रभुने ही उपदेश किया अथवा गणधर और आचार्यदेव द्वारा रचित इस सब आगम परम्परासे जाना। यहाँ इतना भक्तिका सम्मिश्रण है कि प्रभु मोक्षमार्गके लायक हैं। उन्होंने सर्व प्राणियोंके हित का उपदेश किया, फिर भी वे निर्लेप हैं, उनके रागद्वेषका अभाव हैं। इन सब भावनाओंका सम्मिश्रण इस भक्तिभावमें पाया जा रहा है।

न चासुपरिपीडतं नियमतोऽशुभायेष्यते,
त्वया न च शुभाय वा न हि च सर्वथा सत्यवाक्।
न चाऽपि दमदानयोः कुशलहेतुतैकान्ततो,
विचित्रनयभङ्गजालगहनं त्वदीयं मतम् ॥३६॥

(६२) प्रभुशासनकी विचित्रनयभङ्गजालगहनताके कथनमें असुपीडनके फलकी चर्चा—

हे प्रभो ! आपका जो यह शासन है, यह विचित्रनयभङ्गजालसे गहन है। स्याद्वादका सहारा लिए बिना तो नयचक्रके गहन जंगलसे पार होना कठिन है। तब ही तो देखिये—कहा जाता है तथा लोगोंको मान लेना चाहिए कि प्राणियोंके प्राणकी पीड़ा अशुभके लिए होती है पापबंधके लिए होती है, इसको सभी लोग मान लेंगे, तथापि ऐसा भी कोई अभिप्राय है जिस दृष्टिके अनुसार यह कहा जा सकता कि दूसरोंके प्राणोंकी पीड़ा अशुभके लिए नहीं भी है। जैसे

Version 1

किसी बच्चेके सिरमें खाज हो गई तो उसकी माता उसके सिरको साबुनसे धोती है, उसको साबुनसे स्नान कराती है, पर वह बच्चा रोता है, चिल्लाता है। अब देखो—उस माता का अपने बच्चेके प्रति कितना करुणाका भाव है, कहीं उस बच्चेको रुलानेका, दुःखी करनेका भाव थोड़े ही है अथवा जैसे कभी वही बच्चा छतपर खेल रहा हो और खेलता हुआ छतकी मुडेरपर पहुंच जाय तो वह माता उस बच्चोंको तुरन्त पकड़कर अपनी ओर खींच लेती है, उसे मार भी देती है और कुछ भली बुरी गालियाँ भी बक देती है, तिसपर भी क्या उस माँ को पापका बन्ध लगेगा? अरे उसका तो वहाँ बच्चे के प्रति करुणाका, बचानेका भाव है।

कोई अध्यापक अपने शिष्यको हितकी शिक्षा देता है। कभी-कभी डाँट भी देता है, पीट भी देता है, फिर भी उसका पीटना क्या अशुभके लिए हो गया? एक जगह नहीं, अनेक जगह देख लीजिए—कोई साधु समितिपूर्वक गमन कर रहा है, अचानक कोई यों ही बिना दिखे कोई छोटा जीव मान लो उसके पैरोंके नीचे आ गया और वह मर गया तो क्या वह अशुभके लिए बन गया? देखो आपका शासन नयभङ्ग जालसे बड़ा गहन है, उसका सहारा लिए बिना काम न बनेगा। हर बातको नयदृष्टिसे समझना होगा।

(९३) विचित्रनयभङ्गजालगहनकी कथनीमें सत्य, दम, दान की चर्चा—

कोई कहे कि सत्य बोलना पुण्यबंधका कारण है तो कोई यह भी कह सकता कि सत्य बोलना शुभके लिए नहीं भी होता। कैसे?''''सुनो— सत्यका प्रयोजन तो हितसे है, लेकिन यहाँ सत्यका अर्थ स्थूल लिया गया है जैसा जो कुछ हो वैसा बोलनेमें। एक घटना द्वारा समझिये जैसे किसी गाय को मारनेके लिए कोई कसाई छुरी लिए था, मौका मिला कि वह गाय वहाँसे भाग पड़ी। उसके पीछे कसाई भी भाग रहा था। रास्तेमें बैठे थे एक साधु। उन्होंने रास्तेमें उस गायको जाते हुए देखा था, अथवा किसी गुप्तस्थानमें छिपी हुई देखो थी। कसाईने उनसे आकर पूछा—क्यों जी, इधर कोई गाय आयी? तो अब आप ही बताइये कि वह क्या उत्तर दे दे? अरे यदि बता दे कि हाँ वह देखो उधर छिपी है तो क्या यह कोई भली बात होगी? अरे उससे तो गायकी हिंसा हो जायगी। इससे उस जगह सत्य बोलना शुभ नहीं कहा गया। हे प्रभो! आपके शासनमें विचित्रनयभङ्गजालसे गहन है। और भी देखिये—दमन करना, दान करना यह कुशलताका, पुण्यबन्धका, सुखका कारण है, ऐसा प्रायः सभी लोग कह देंगे, लेकिन यह भी तो बात है कि दमन करना और दान देना, यह कुशलताका कारण ही हो, ऐसा एकान्त नहीं है।

कोई कहे कि इन्द्रियका दमन करना बहुत अच्छा है,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

देखो आँखोंसे किसी चीजको देखते हैं तो पापकी बात मनमें आती है, इसलिए इन आँखोंको फोड़ लें, यह सोचकर कोई आँखोंका दमन कर दे, फोड़ दे, तो उससे लाभ क्या होगा ? इसी प्रकार कोई अपने यश प्रतिष्ठा आदिके लिए या लोगोंको अपना पाप छुपाने और दानी धर्मात्मा कहलवानेके लिए लाखोंका धन दान कर दें तो उससे भी लाभ क्या होगा ? क्या उसका वह दान पुण्यबन्धका कारण हो जायगा ?···· न होगा। हे प्रभो ! देखो— आपका उपदेश नयभङ्गसे गहन है। जहाँ भावोंकी विशुद्धि हो वह तो शुभके लिए होती, जहाँ भावोंमें संक्लेश हो, विपरीतता हो, अनर्थ हो, स्व-परका अकल्याण हो वह अशुभके लिए है। ऐसी सब जगह विवेक रखनेकी बात आपके शासनमें बतायी गई है।

त्वयाऽपि सुखजीवनार्थमिह शासनं चेत्कृतं,
कथं सकलसंग्रहत्यजनशासिता युज्यते ।
तथा निरशनार्द्धभुक्तिरसवर्जनाद्युक्तिभिर्जिते-
न्द्रियतया त्वमेव जिन ! इत्यभिख्यां गतः ॥४०॥

(९४) प्रभुशासनका प्रयोजन सत्य विजय—

लोग ऐसी सर्वत्र देख रहे हैं धर्मकी रूपरेखा कि जिसमें आराम है, सुख है, अच्छे हैं, संन्यासी हैं। धोती पहन ली, खूब लम्बा रंगा हुआ कुर्ता पहन लिया, ताकि अन्य लोगों से कुछ विलक्षण मालूम हो कि यह साधु है अथवा काठके

http://www.jainkosh.org

खड़ाऊँ पहन लिए जो कि श्रावकजनोंके लिए भी निषिद्ध है। पर खड़ाऊँ पहिनकर मानने कि हम पवित्रताकी मूर्ति हैं, तो रूपरेखामें धर्मकी अनेक जगह ऐसी है कि जहाँ सुखसे रहते, लेकिन हे नाथ ! यदि तुमने ऐसा सुखसे जीनेके लिए शासन बताया होता, जिस जीवनमें बड़े ऐब दिखते हैं। सुखसे रहते हुए धर्म करो, धर्मात्मा बनो, संन्यासी साधु बनो, इस तरह का शासन यदि आपने किया होता तो फिर यह उपदेश क्यों युक्त होता कि समस्त परिग्रहोंका त्याग करना चाहिए। यह निःपरिग्रहताका उपदेश ही यह सिद्ध कर रहा है कि जीवनके सुख ऐश-आरामकी अभिलाषा मत करो। जैसा हो सो हो, अन्तः प्रसन्न और निर्मल रहनेकी कोशिश करो। और भी देखिये—जो उपदेश किया है—उपवास करो, अर्द्धभोजन करो आदि, इन बातोंका जो विधान है उन सब युक्तियोंसे जाना जाता कि हे भगवान जिनेन्द्रदेव ! आप जिन हो, इसीलिए तुम्हारा नाम जिन पड़ा है। जो इन्द्रियको जीते, राग-द्वेषको जीते सो जिन। हे प्रभो ! आपने क्षणिक आनन्दका उपदेश नहीं किया, किन्तु विशुद्ध स्वाधीन अनन्त आनन्दका उपदेश किया गया है।

जिनेश्वर ! न ते मतं पटकवस्त्रपात्रग्रहो,
विमृष्य सुखकारणं स्वयमशक्तकैः कल्पितः ।
अथायमपि सत्पथस्तव भवेद्वृथा नग्नता,
न हस्तसुलभे फले सति तरुः समारुह्यते ॥४१॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(६५) प्रभुशासनमें त्यागका महत्त्व—

कुछ लोग आरामकी चीजोंको उपकरण नाम देकर अपने आपको धर्मात्मा प्रसिद्ध करनेके लिए युक्तियोंसे अपना आराम बना लिया है । वस्त्र रखना, बर्तन रखना, पात्र रखना—ये उपकरण हैं । साधुओंको ये रखना चाहिए, इस तरहका जो उपदेश किया गया है सो साधुजनोंने सुखका कारण सोचकर स्वयं रचा है, कल्पना किया है, किन्तु आपने उपदेश ऐसा नहीं किया । इतने वस्त्र रखो, इतने बर्तन रखो, इतना अमुक रखो, और जो-जो भी आरामके साधन हैं—लाठी आदिक जो उपकरणकी बातें प्रचलित हुई हैं वे स्वयं अशक्त पुरुषोंने अपने आप कल्पना की है । यदि यह सत्पथ होता तब तो तुम्हारी नग्नता व्यर्थ है । तीर्थंकरों को नग्न दिगम्बर श्वेताम्बरोंने भी माना, स्वयं उन्होंने शास्त्रों में कहा है तो स्वयं तो नग्न रहकर साधना करें और दूसरों को बतायें कि तुम ऐसे-ऐसे आरामके साधन रख लो तो यह कैसे युक्त हो सकता है ? यदि वस्त्र, बर्तन आदि रखते हुए भी धर्म हो जाता तो फिर नग्नताकी क्या आवश्यकता थी ? जैसे छाया यों ही हस्तसुलभ प्राप्त हो जाय तो फिर किसी वृक्षके नीचे ठहरनेकी आवश्यकता क्या ? ऐसे ही यदि परिग्रह के बीच रहते हुए ही मोक्ष मिल जाय तो फिर निर्ग्रन्थता आश्रय करनकी आवश्यकता क्या ? जो कुछ यह रचा गया है

परिग्रहका सम्पर्कका उपदेश, वह स्वयं कमजोर पुरुषोंने किया है । आपका उपदेश किया हुआ मार्ग तो केवल कैवल्यका मार्ग है । इस बाह्य और अन्तः कैवल्यमें रहो और उस विधिसे केवल ज्ञान प्राप्त होनेका आपका उपदेश है ।

परिग्रहवतां सतां भयमवश्यमापद्यते,
प्रकोपपरिहिंसने च परुषानृतव्याहृती ।
ममत्वमथ चोरतो स्वमनसश्च विभ्रान्तता,
कुतो हि कलुषात्मनां परमशुक्लसद्ध्यानता ॥४२॥

(६६) परिग्रही पुरुषोंमें भय, प्रकोप हिंसन, कर्कशवचनादि दोषोंके कारण आप्ततताकी अयुक्तता—

जो परिग्रहवान लोग हैं उनका हृदय कलुषित रहता है, उनको परमशुक्लध्यानकी प्राप्ति कैसे हो सकेगी ? परिग्रहवान पुरुषोंके भय नियमसे रहता है, क्योंकि मूर्छा है और बाह्य परिग्रहको ममत्वसे रख रहे हैं तो उसमें कोई हानि न हो जाय, कहीं नुक्सान न हो जाय, इस प्रकारका भय अवश्य ही रहता है । पहिले हजारों साधुओंका संग रहता था । सब निर्ग्रन्थ निष्परिग्रह थे । बस कमण्डल, पीछी और शास्त्र ये ही मात्र उनके उपकरण साथ रहते थे, जहाँ चाहे विहार कर जायें । किसी प्रकारकी विपत्ति नहीं, लेकिन जैसे अब प्रथा चल उठी है, मोटर रखना और हाथी आदिक परिग्रह रखना, तो जो परिग्रह रख रहा उसके चित्तमें कितनी चिन्ता, शंका,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

भय और शल्य बनी रहती है ? कितना ही विशाल संग हो, यदि सब ही निर्ग्रन्थ हैं तो वहाँ इनकी आवश्यकता नहीं है। हाँ विविक्तताका संग बनायें कि उसमें श्रावक रहें, ब्रह्मचारी रहें, और और रहें तो उनका तो परिग्रह है और उनका ठेका किसी मुख्यने रखा तो उसे अवश्य ही शंका, भय रहेगा, उसके शुक्लध्यानकी पात्रता तो आ ही कहाँसे सकेगी ? जैसे महंत लोग होते हैं वे भी साधु कहलाते हैं। महंत हैं, बड़ी जायदाद है, ऊँट, घोड़ा, हाथी आदि हैं, बड़ा हिसाब है। एक किसी लखपति धनीसे कम धनी नहीं है, तो क्या उसके शुक्लध्यान हो जायगा ? नहीं हो सकता। ऐसी ही बात सब जगह घटित करनी चाहिए। जो परिग्रहवान जीव हैं, उनके भय अवश्य ही होता है। इसके अतिरिक्त क्रोध आ जाय और हिंसाकी भी बात आ जाय। किसीने बात न मानी, लो क्रोध आ गया, और उसकी सम्हालमें हिंसा आदिक दोष भी संभव हैं।

तो परिग्रहवान जीवके क्रोध भी आयगा, हिंसाकी बात भी होगी और भय भी बना रहेगा, कठोर और असत्य भाषण भी बन जायगा, और नहीं तो इतना तो कह ही देगा कि अजी इस मोटरको या इस हाथीको भक्तोंने हमारे साथ रख दिया। और कोई प्रतिकूल बात हो तो कठोर शब्द भी बोल दिया जायगा। तो कितना दोष है परिग्रहके रखनेमें।

http://www.jainkosh.org

भय हो, क्रोध हो, हिंसा हो, कठोर वचन बोलनेमें आयें, असत्य वचन बोलनेमें आयें, इसके अतिरिक्त और भी दोष देखिये—ममत्वभाव हो और स्वप्नोंसे, चोरोंसे, हर एकसे भ्रान्ति बनी रहे, सन्देह बना रहे, शंका बनी रहे। कोई कुछ चीज रखे हुए हैं, रुपये पैसे रखे हुए हैं तो उसके प्रति शंका बनी रहती है। कहीं यह रुपये दाब न ले, कहीं यह दगा न दे दे, तो ये भी ऐसे दोष परिग्रहवान जीवके होते हैं। सो ठीक ही है, जिसकी आत्मा कलुषित है, ऐसे आत्माको उत्कृष्ट शुक्लध्यान कहाँसे बन सकता है ? इस छन्दमें भक्तिमें यह प्रदर्शित किया है कि हे प्रभो ! आप अत्यन्त निष्परिग्रह हैं, इसलिए सर्वभक्ति पात्रता आपमें ही सम्भव है।

स्वभाजनगतेषु पेयपरिभोज्यवस्तुऽवमी,
यदा प्रतिनिरीक्षितास्तनुभृतः सुक्ष्क्ष्मात्मिका।
तदा क्वचिदपोज्झने मरणमेव तेषां भवे-
दथाऽप्यभिनिरोधनं बहुतरात्मसमूर्च्छनम् ॥४३॥

(६७) बर्तन रखकर उसमें भोजन लाकर खानेकी प्रवृत्तिमें हिंसाकी संभवता होनेसे प्रभुशासनमें बताई गई दैगम्बरी वृत्तिकी योग्यताका स्मरण—

हे प्रभो ! आपकी चर्चामें यह बताया गया है कि जब क्षुधा हुई तब योग्य समयमें गये और जिसने भक्तिपूर्वक बुलाया वहाँ आहार कर आये, अपने हाथमें ही भोजन करके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आये। इसके विरुद्ध कुछ लोगोंने यह कल्पना की है कि अपने एक दो पात्र रखें, दो-चार जगहसे वस्तुवें ले आये और अपने किसी स्थानपर बैठकर खा लें, लेकिन इस प्रवृत्तिमें साधुके अनुचित कितनी वृत्ति बनती है कि देखिये कोई पेयकी चीज हो या भोजनकी चीज हो उसमें जब काई सूक्ष्म जीव आ पड़े, जब सामान लाये हैं तो घटा दो घटा समय लगेगा उनके ताकनेमें, सम्हालनेमें, तो उन वस्तुओंमें जो कि पात्रोंमें रखी हुई हैं उनमें कोई जीव गिर जाय तो उसका क्या करे? उसको उठाकर कहीं डाले तो उसमें उस जीवका मरण संभव है। उसीमें ही बनाये रखे तो मरण सम्भव है। बाहर डाले तो उसमें उस जीवका निरोध होता है, वहाँ बनाये रखे तो उसमें सम्मूर्छन जीवोंकी उत्पत्ति होती है।

तो इतनी भी हिंसा न होनी चाहिए। इसको बचानेके लिए तो यह प्रक्रिया बतायी है भैक्ष्यवृत्तिमें कि मुनि अपने हाथपर आहार करके चला आये। तो जैनशासनमें जो प्रक्रिया बताई गई है वह कितनी सुदृढ़ है, विधिमें आ जाती है। प्रभुभक्तिमें प्रभुके किसी प्रकारकी हिंसा सम्भव नहीं होती। प्रभुके गुण गाये जाते हैं, प्रभुकी वाणीकी समीचीनता भी गाई जाती है, प्रभुके शासन गाये जाते हैं। प्रभुका जो मार्ग है उसका भी गान होता है। यह प्रभुके साधुमार्गका गुणगान समझ लीजिए कि कितनी निर्दोष विधिसे आपने मार्ग अपनाया और प्रभुता

प्राप्त की।

> दिगम्बरतया स्थिताः स्वभुजभोजिनो ये सदा,
> प्रमाद रहिताशयाः प्रचुरजीवहत्यामपि।
> न बन्धफलभागिनस्त इति गम्यते येन ते,
> प्रवृत्तमनुविभ्रति स्वबल-योग्यमप्याप्यमी ॥४४॥

(६८) प्रमादरहिताशय साधुकी अनवद्यता—

जो दिगम्बर रूपसे स्थित हैं, अपने ही हाथमें भोजन करने वाले हैं, प्रमादरहित आशय जिनका है, सावधान चित्त हैं, ऐसे पुरुषके कदाचित् कभी कुछ जीवोंकी हिंसा भी हो जाय, पग तले कोई जीव आकर मर जाय तो भी उनके कर्मबंध नहीं होता। कर्मोंने मानो यह व्रत ले रखा है कि आत्मामें कषायभाव जगे तो वहाँ हम बँधें और उनका यह व्रत या यह आदत नहीं है कि यह कैसे हाथ-पैर चलाता है उसके अनुसार बंध जायें। कर्मोंके बन्धनका तो केवल एक हेतु है कि इसमें कषायभाव किस प्रकारका चल रहा है उस ढंगसे वह बँध जायगा। और जो वर्णन किया गया है कि हाथ-पैर की क्रियायें न करो, यह योग है, उससे बंध होता है, यों न चलना, यों न बैठना, यों न सोना, इस तरह न भागना, क्योंकि इस तरह हाथ-पैर चलाओगे तो खोटे कर्म बँधेंगे। यह जो कथन है वह इस बातके संकेतके लिए है कि जिसमें कषाय होगा, प्रमाद होगा, दुर्भाव होगा, असावधानी है,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अज्ञानता है, ऐसे जीवोंके इस तरहकी क्रियायें होती हैं। और ऐसी क्रियायें जो जानकर कर रहे हैं, ऐसी कषाय है तो कर्मबन्धनका कारण हस्तादिककी क्रियायें नहीं, किन्तु कषाय है। और ऐसी कषायमें ऐसी बातें होती हैं अथवा जो कोई इस तरहकी चेष्टा करेगा उसके इस तरहकी कषाय जगेगी।

यों उनको बता दिया गया है, क्योंकि विधिपूर्वक प्रयत्न करनेकी और बात क्या कही जाय? जैसे कहीं-कहीं लोग कहने लगते हैं कि महाराज यह बच्चा बहुत क्रोध करता है आप इसको नियम दिला दें कि क्रोध न करे। अब उस समय हम बड़ी हैरानीमें पड़ जाते हैं कि कैसे नियम दिलावें कि तू क्रोध न कर। वह क्रोध न करनेका नियम कैसे ले पायगा? कोई बाहरकी बात हो—भाई तुम चुप बैठ जावो, तुम मुँहमें पानी भरकर बैठ जावो अथवा तुम यहाँसे चले जावो, इस बातको कहा जा सकता है, पर तुम्हारे परिणाममें ये विभाव उत्पन्न न हों, इस बातका नियम किसीको कैसे दिलाया जा सकता? अरे वह तो ज्ञानसाध्य बात है, निर्मल परिणाम बनाना भावना साध्य बात है। तो इस तरह जो कर्मबन्ध होता है वह होता है कषायभावका निमित्त पाकर। मगर उस कषायसे हटनेके लिए चरणानुयोगमें उपदेश है, ऐसा चलो, ऐसे बैठो—उससे कषायमें फर्क आयगा, और जिनके कषायोमें फर्क आया उनके ऐसी चेष्टा होती, उसीका

http://www.jainkosh.org

वर्णन है। तो जो प्रमादरहित आशय वाले हैं वे पुरुष व्रती होनेपर भी बंधफलके भोक्ता नहीं होते। ठीक है, इसीलिए तो अपने ज्ञानमाफिक, अपने बलमाफिक ऐसी प्रवृत्ति होनी चाहिए कि जिसमें जीवहिंसा न हो। अगर प्रमाद दोष आ गया तो जीवहिंसा न होनेपर भी हिंसा कहलाती है। तो कितना निरपेक्ष शासन है प्रभु आपका?

यथागमविहारिणामशनपानभक्ष्यादिषु,
प्रयत्नपरचेतसामविकलेन्द्रियालोकिनाम्।
कथंचिदसुपीडनाद्यदि भवेदपुण्योदय-
स्तपोऽपि वध एव ते स्वपरजीव संतापनात् ॥४५॥

(९९) प्राणपीड़ा होनेपर तपकी भी अयुक्तता—

उक्त छंदमें तो यह बताया है कि प्रमादरहित आशय हो तो उसके हिंसाका दोष नहीं होता। इस छन्दमें यह बता रहे हैं कि यदि तपश्चरण आदिक कोई कार्य कर रहे हों और उन कार्योंमें ऐसी बात आती हो जिसमें प्राणियोंको पीड़ा होती हो तो उस तपमें भी हिंसाका दोष है। जैसे आगममें बताया है इस तरहसे विहार कर रहे, जैसा आगममें कहा है उस तरहसे खाने-पीनेकी चर्यामें यत्न कर रहे, इतनेपर भी किसी प्रकार वहाँ प्राणि पीड़ा होती है, स्व और परजीवका संतापन किया जाता है, अपने आपमें हैरानी भी अनुभूत की जाती हो तो ऐसा भी जो तपश्चरण है वह भी क्या है?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पुण्योदय है, वहाँ बंध ही कहा जाना चाहिए। परवधसे स्ववध कहीं कीमती बात नहीं कहलाती है। जहाँ अपने आपके प्राणोंकी हिंसा हो रही हो, अज्ञान चल रहा हो, हैरानी अनुभूत की जा रही हो, संक्लेश किया जा रहा हो उसको क्या कोई मामूली बात कहेंगे ? जहाँ यह कहा है कि देखो इस तरह चलो, इस तरह बैठो आदि और उस तरह करके भी भीतरमें अगर वह संक्लेश कर रहा है तो कहीं उससे कर्मबन्ध तो न रुक जायगा। तो भीतरमें सब कुछ भावोंके आधीन बात होती है। भाव यदि विशुद्ध हैं तो वह शुभ है और यदि भावोंमें संक्लेश है तो अशुभ है। हे प्रभो ! आपका शासन, आपका निर्णय सब भावोंपर आधारित है।

मरुज्ज्वलनभूपयः सुनियमात्क्वचिद्युज्यते,
परस्परविरोधितेषु विगतासुता सर्वदा।
प्रमाद दजनितागसां क्वचिदमोहनं स्वागमा-
त्कथं स्थितिभुजां सतां गगन वाससां दोषिता ॥४६॥

(१००) निरारम्भ दिगम्बरोंमें दोषिताका अभाव—

कोई संन्यासी बनकर आरम्भ भी करता है, भोजन बनाता, धूनी रमाता, घर बसाता, खेती करता। साधारण भी कोई आरम्भ करे, अपने भोजनपानके लिए भी कोई आरम्भ करे तो जहाँ हवा चलाया, आग जलाया, पानी भरा आदि जो भी कार्य आरम्भ किया तो वहाँपर प्राणिहिंसा

सम्भव है, क्योंकि वहाँपर प्रमादसे अपराध चल रहे हैं। कषाय है, उसके अनुसार प्रवृत्ति हो रही है, भावोंमें भी विकार चल रहा है तो है वहाँ प्राणिहिंसा, मगर जो निर्ग्रन्थ साधु हैं, खड़े-खड़े भोजन करने वाले हैं, दिशायें ही जिनके वस्त्र हैं, जो निरारम्भ और निष्परिग्रह हैं, ऐसे साधुओंमें कोई दोषकी बात क्या हो सकती है ? यही साधुका लक्षण है। समन्तभद्राचार्यने अपने थोड़ेसे शब्दोंमें ही विशेषण देकर पूरा स्वरूप बता दिया। जो इन्द्रियके विषयोंके आधीन हो, जिसे खाना रुच रहा, सुगंध रुच रही, बड़ी सफाई, बड़ा सुन्दर ढंग जिसे रुच रहा उसको राग तो है ही। अरे साधकका ऐसा रूप है कि कहीं कोई उपसर्ग कर रहा है, कैसी ही जमीनमें रह रहा है, गुफामें रह रहा है, जमीनमें सो रहा है, वहाँ आरामकी क्या बात ? ऐसे दिगम्बर पुरुषोंके दोषकी कोई बात नहीं, क्योंकि विषयोंकी आशा नहीं रही, बढ़िया गाना सुनना, मनका विषय चाहना, ये सब बातें जहाँ हों वहाँ साधुता क्या ?

साधु वह होता है जो विषयोंके आधीन न हो, आरंभ परिग्रहसे रहित हो, ज्ञान ध्यान तपश्चरणमें लीन हो, इन तीन बातोंपर जरा दृष्टि दो एक अध्यात्मदृष्टिसे। ज्ञान, ध्यान और तप—इन तीनोंमें क्रम है। सबमें ऊँची चीज ज्ञानकी स्थिति है। ज्ञानकी स्थितिके मायने स्वाध्याय कर लेना,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

समझ लेना, चर्चा कर लेना, 'यह नहीं, किन्तु ज्ञाता रहना। केवल एक विशुद्ध ज्ञानकी सत्ता रहना, इस ज्ञानकी स्थितिमें न रह सके, ज्ञातृत्वकी स्थितिमें न रह सके तो ध्यानमें रहे, तत्त्वचिन्तनकी विशेषता रहे। यदि ध्यानकी स्थितिमें भी न रह सकें तो तपश्चरणमें लगें। जो अनेक प्रकारके तपश्चरण हैं उनमें प्रवृत्ति करे, जिसके ज्ञाता रहना, ध्याता रहना, तपस्वी रहना, जिसका व्रत है और फिर स्थूल रूपसे अर्थ लगाओ—स्वाध्याय करना, ध्यान करना, तपश्चरण करना, इनमें क्रम नहीं है।

मोटे रूपसे स्वाध्याय करें, ध्यान करें, तपश्चरण करें, कभी कुछ करें, ऐसी जिनकी वृत्ति है वे साधु-संत पुरुष हैं, वहाँ आरम्भका क्या काम, परिग्रहका क्या काम ? वास्तविकता तो यह है कि मुनि उसका नाम है जो आत्मस्वरूपके मननमें ही सारा समय लगावे। कोई ज्ञानी गृहस्थ हो और उसके तीव्र रुचि जगे कि मेरा समय तो तत्त्वके मननमें अधिक हो और सब बेकार है तो उसे झंझट लग रहा। घरमें रहने, परिवारमें रहने आदिके काम तो उसे बाधक मालूम हो रहे। वह अपने आत्मस्वरूपमें अधिक देर तक ठहर ही नहीं पा रहा। उसकी यह भावना सदा रहती कि यहाँके इन जंजालों को छोड़ देनेमें ही मेरी भलाई है। तो ऐसे आत्मदर्शी पुरुषके आरम्भ परिग्रहकी बात ही कहाँ है ?

http://www.jainkosh.org

परैरनघनिर्वृतिः स्वगुणतत्त्वविध्वंसनं,
व्यघोषि कपिलादिभिश्च पुरुषार्थविभ्रंशनं।
त्वया सुमृदितैनसाज्वलितकेवलौघश्रिया,
ध्रुवं निरुपमात्मकं सुखमनन्तमव्याहतम् ॥४७॥

(१०१) मोक्षभागविधिकी उपलब्धिके योग्य प्रभुदर्शन—

कुछ दार्शनिकोंने यह बतलाया है कि अपने गुण और तत्त्वोंका विध्वंस कर दें तो मोक्ष हो जाता है। उनका सिद्धांत है कि पुरुषमें (आत्मामें) ज्ञान नहीं हुआ करता। आतमा तो एक मात्र शुद्ध चैतन्यस्वरूप है। ज्ञान तो आत्माके लिए कलंक है और वह प्रकृतिके कारण मिला हुआ है। ज्ञान, अहंकार इन्द्रिय, शरीर आदिक ये सब प्रकृतिके विकार माने हैं, तो लो यह ही दर्शन बन गया कि अपने गुणका विनाश कर दें तो मोक्ष होगा। अब पौरुषकी क्या जरूरत रही ? और वहाँ सुख भी क्या रहा ? न आत्मामें आनंदगुण है, न आत्मा में ज्ञानगुण है, वह तो एक चित्स्वरूप है। चित्स्वरूप क्या ? उसकी कोई व्यक्त स्थिति नहीं बतायी जा सकती। ज्ञानरहित चैतन्य। उसका स्वरूप बतलाओ क्या रहा ? फिर वहाँ आनंद क्या ? और अन्य बात भी क्या ? पुरुषार्थ भी क्या ? किसे मोक्ष दिलाना ? वह तो चिन्मात्र है। वह तो ज्ञानमें था ही नहीं, सुख दुःखमें है ही नहीं। ये तो प्रकृतिके विकार हैं। देखो उन दार्शनिकोंने बहुत गल्तियां तो नहीं कीं। बस वे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

थोड़ा चूक गए, स्याद्वादका सहारा नहीं लिया ।

कहा तो सब ठीक है । एक स्याद्वादका सहारा न लेनेसे गलत बन गए । क्या यह बात सत्य नहीं है कि सुख दुःख आत्माके स्वभावमें नहीं, कर्मविपाक है, कर्मदशा है, कर्मोदयसे होते हैं और उनको यह जीव स्वीकार कर लेता है, बस यह जीव अपराधी है, उन्हें स्वीकार न करें, अपना न बनायें, अपने रूपसे न मानें तो निरपराध हैं । बस यह ही नकल प्रकृति और पुरुषके सिद्धान्तमें की गई है । ये सुख दुःख क्या हैं ? प्रकृतिके विकार हैं । और ज्ञान भी क्या है ? प्रकृतिका पहिला विकार । ये सब दूसरे तीसरे नंबरके विकार हैं, क्योंकि प्रकृतिसे जब विकारका उद्गम होता है, तो उसका क्रम बताया गया है । बुद्धिसे अहंकार बनता, अहंकारसे फिर शरीर, इन्द्रिय आदिककी रचना होती है । प्रकृतिके विकार हुए सुख-दुःख और उनका निर्णय भी बनाया प्रकृतिके विकार रूप बुद्धिने । तो सब व्यवस्था तो बना दी, प्रकृतिने बुद्धिका निर्णय कर दिया, अब सब बात तैयार हो जानेपर बुद्धिके द्वारा निर्णीत इन विकारोंको इस आत्माने चेता, जिसे कहते हैं बुद्धिसे अवसिक्त अर्थको चेतता है यह जीव । बात वही तो हुई कि कर्मोदयसे होने वाले विकारको इस जीवने स्वीकार कर लिया । करी तो नकल, लेकिन स्याद्वादका सहारा छोड़नेसे उन्हीं शब्दोंमें रह गए । उनका अर्थ ठीक न रहा, प्रतिपक्ष

कुछ न रहा । अप्रतिपक्ष वचन बन गया, एकान्तका आग्रह हो गया ।

(१०२) सही दृष्टि न समझनेपर एकान्ताग्रहकी विडम्बना—

जैसे एक अलंकार होता है परसनीफिकेसन (रूपक अलंकार) । उसमें जैसे वर्णन किया गया कि कीर्ति आज तक कुमारी रही, उसका विवाह न हो सका, क्यों न हो सका कि यह समस्या रही कीर्तिके सामने कि जिसकी कीर्ति चाहती थी उसने कीर्तिका विवाह न किया और जो इस कीर्तिको चाहता था उसकी ओर कीर्तिने देखा तक नहीं । तो कीर्तिका विवाह ही न हो सका । कीर्तिके मायने हैं यश, प्रतिष्ठा । यह यश तो किसी महापुरुषके ही हो सकता है । वह महापुरुष तो इस कीर्तिको चाहता ही नहीं और जो साधारण लोग इस यशको चाहते हैं उन्हें कीर्ति चाहती नहीं, तब तो फिर यह कीर्ति कुमारी ही रही । इसे कुछ लोगोंने समझा कि कीर्ति नामकी कोई देवी है, वे इस तरहका व्यवहार करते हैं तो लो अनेकांत हो गया ना ?

आज जितने देवी देवताओंके नाम प्रसिद्ध हैं—दुर्गा, काली, सरस्वती आदि उन सबकी प्रसिद्धि इसी तरहसे हो गई । कवियोंने किसी बातका अलंकारके ढंगसे वर्णन किया था, पर नासमझ लोगोंने उसको उसी रूपमें मानकर वैसा ही एकान्त कर लिया । इस तरहसे वह एक अलगसे ही सिद्धान्त

Report any errors at vikasnd@gmail.com

बन गया। तो यहाँ प्रकृत पुरुषके दर्शनकी चर्चामें कहा जा रहा है कि उन्होंने गुणका विध्वंस माना, मगर आपके यहाँ केवल ज्ञानलक्ष्मीका ज्वलन है, प्रकाश है, ऐसा आपने बताया कि आत्मामें तो स्वभावतः ध्रुव निरुपम अप्रतिघात सुख है। ऐसा इसका स्वभाव है और यह स्वभाव ज्ञानको साथ लिए हुए है। सुखका रूप क्या? जहाँ ज्ञान नहीं। सुख और ज्ञान एक ज्योतिमें पाये जाते हैं। कोई ज्ञानसे पृथक् सुख नहीं पड़ा हुआ है। इसका नाम सुख है, इसका नाम ज्ञान है। इस सुख को ज्ञानसे अलग धर दो, इस सुखको ज्ञानमें मिला दो, ये तो सब आत्माके स्वरूप हैं। ऐसा यथार्थ निरूपण हे प्रभो! आपके शासनमें पाया जाता है।

निरन्वयविनश्वरी जगतिमुक्तिरिष्टापरै-
र्न कश्चिदिह, चेष्टते स्वव्यसनाय मूढेतरः।
त्वयाऽनुगुणसंहतेरतिशयोपलब्ध्यात्मिका,
स्थितिः शिवमयी प्रवचने तव स्थापिता ॥४८॥

(१०३) स्याद्वादसम्मत आत्माके परिज्ञान होनेपर ही शिवमयी स्थितिकी संभवता—

हे प्रभो! कुछ दार्शनिकोंने जो आपके स्याद्वादसे बहिर्भूत हैं उन्होंने क्या इष्ट किया कि निरन्वय विनाश होने का नाम मोक्ष है। जीव क्षण-क्षणमें नये-नये पैदा होते रहते हैं। सो विनश्वर तो है यह बात तो ठीक है, मगर आफत

http://www.jainkosh.org

यह बताते हैं कि एक शरीरमें जीवोंके पैदा होनेका जो तांता चल रहा है, होते ही जा रहे हैं पैदा, बस यही दुःखकी बात बतायी है। इसीका नाम संसार कहा है। तो मोक्ष कैसे हो, बस उनकी संतति नष्ट हो जाय, अब अन्वय न चले, बस मोक्ष हो गया।

तो निरन्वय विनाशका नाम मुक्ति माना है कुछ लोगोंने, सो क्या मान लिया? इसको अगर किसीको समझाया जाय कि देखो तुम्हारा हम मोक्ष कराते हैं, करा दो भाई। क्या मोक्ष, बस मर जाना, नष्ट हो जाना, तो ऐसी अपनी आपत्तिमें लिए, अपने विनाशके लिए कौन चाहेगा कि मैं बिल्कुल न रहूं, नष्ट हो जाऊँ, इसीका नाम मोक्ष है। उसका तो विनाश होता ही नहीं, और अपने विनाशके लिए कौन प्रयत्न करेगा? हे प्रभो! आपने बताया है कि मुक्ति कल्याणमयी है और वह गुण समुदायके अतिशय उपलब्धि रूप है याने गुणके पूर्ण विकास होनेका नाम मोक्ष है और वह कल्याणमय है, ऐसी स्थितिसे मुक्ति आपके प्रवचनमें ही प्रसिद्ध होती है। इस भक्तिमें इस छन्द द्वारा यह बताया है कि क्षणिकवादके शासनमें मुक्तिकी कहाँ प्रतिष्ठा है? आपका जो नित्यानित्यात्मक शासन है, द्रव्यतः सदा रहे, पर्यायतः परिणमता रहे वहाँ ही मुक्ति सम्भव है। जैसे क्षणिकवादमें मुक्ति सम्भव नहीं, ऐसे ही सर्वथा नित्यवादमें मुक्ति सम्भव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं, तो कैसा आपका उलझनरहित शासन है कि जहां शान्ति का मार्ग प्रसिद्ध होनेमें किसी प्रकारकी सन्देह नहीं।

इयत्यपि गुणस्तुतिः परमनिर्वृतेः साधनी,
भवत्यलमतो जतो व्यवसितश्च तकाङ्क्षया।
विरंस्यति च साधुना रुचिरलोभक्ताभे सतां,
मनोऽभिलषिताप्तिरेव ननु च प्रयासावधिः ॥४६॥

(१०४) परमनिर्वृतिसाधनी गुणस्तुतिका स्तवन—

पात्रकेशरिस्तोत्रके अन्तिम दो छन्दोंमें उपसंहार और अन्तिम कथनका वर्णन है। आचार्यदेव कहते हैं कि हे प्रभो, तुम्हारे गुणोंकी की गई स्तुति परममोक्षकी साधन बनती है। जिसका मन्तव्य ठीक है, जिसकी बुद्धि निर्मल है उसको कहीं से भी थोड़ा सिलसिला मिलता है तो उसके आगे और उत्कर्ष में बढ़ जाता है। बड़े निर्मल भावपूर्वक बाह्य सांसारिक समागमोंको दूर करके भगवानके गुणोंकी स्तुति अपनी विशद भावनासे, शिवभावनासे हो तो वह परममोक्षकी साधन बनती है। जीवका सुख दुःख आनन्द सब कुछ निर्णय इस ज्ञानके साथ लगा हुआ है। ज्ञानमें निर्मलता आये, रागद्वेषको पुट न हो, किसी प्रकारका भ्रम न हो, एक विशुद्ध ज्ञानज्योतिका अनुभव करनेकी पात्रता हुई हो, ऐसे निर्मल आत्माका जो कुछ सम्वेदन हो रहा है वह है आनन्द। और अपने आपके

स्वरूपकी सुध न रखकर बाह्य पदार्थके विषयोंके प्रसंगमें जो ज्ञानमें कल्पना बनती है वह ज्ञानकी ऐसी स्थिति है सुख और जब अनिष्ट विषयोंका ध्यान रखकर अनिष्ट मान-मानकर संक्लेश किया जाता या इष्ट समझकर वियोगमें दुःख माना जाता तो उस समय जो ज्ञानकी स्थिति चल रही है वह है दुःखकी चीज।

(१०५) उपर्युक्त विषयका सारांश—

सारांश यह है कि हम किस तरहका ज्ञान बनायें तो क्या पायें ? और मात्र सुख दुःखकी ही बात क्या, जगतमें जितनी कुछ भी विडम्बना चल रही है पशु-पक्षी बनना, कोट पतिंगा बनना, नाना दुर्गतियां होना, कैसे-कैसे शरीर मिलना, यह सब कुछ इस ज्ञानकी मुद्रापर निर्भर है। जब अभेद विवक्षा करके इस बातपर दृष्टि करेंगे तो यह लगेगा कि यह जीव जैसी अपने ज्ञानकी शक्ल-सूरत मुद्रा बनाता है उस तरह का यह फल पाता रहता है। यहाँ कह रहे हैं कि जो पुरुष निर्मल भावोंसे गुणके अनुरागसे प्रभुके गुणोंकी स्तुति करता है उस पुरुषको मोक्षका उपाय मिलता है।

(१०६) प्रभुभक्तिकी उपयोगिता—

एकीभाव स्तोत्रमें तो यहाँ तक कहा है कि शुद्ध ज्ञान हो, शुद्ध चारित्र हो, फिर भी यदि इसमें उत्कृष्ट भक्ति न हो तो प्रभु उसके लिए मोक्षका द्वार बन्द नहीं। शंका यहाँ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

यह की जा सकती कि शुद्ध ज्ञान हो गया, शुद्ध चारित्र हो गया, फिर वहाँ भक्तिकी क्या आवश्यकता ? वह तो भक्तिसे और ऊँचा हो गया। भला यह बतलाओ कि भक्तिके बिना चारित्र क्या ? जहाँ आत्मसेवा नहीं है, आत्माके शुद्ध स्वरूप का अनुभवन नहीं है वहाँ चारित्र कहां ? यही तो भक्ति है और इसीकी प्रेरणा मिलती है। हमको प्रभुभक्तिसे तो प्रभुता और आत्मस्वरूपमें अन्तर क्या है ? केवल एक धामका अतर है, स्वरूपमें अन्तर नही है। एक परधाममें है और एक स्वधाममें है। पर जिस स्वरूपकी भक्ति की जा रही है वह स्वरूप तो स्वरूप ही है। उस स्वरूपकी भक्ति प्रभुकी भक्ति है। तो कितना भी ज्ञान हो, कितना भी चारित्र हो, भक्तिके बिना हम आगे बढ़ नहीं सकते। अब और स्थूल रूपसे देखिये—जिसे कहते हैं ज्ञान। खूब अनेक शास्त्रोंका ज्ञान कर रहे हैं, इसे कहते हैं चारित्र। बड़ी समितिसे चल रहे, बड़ी सावधानीसे अपना व्यवहार कर रहे, बड़ी शुद्धिसे क्रिया कर रहे तो यह संयम सब कुछ कर रहा, मगर प्रभुभक्ति उमड़ न रही हो, वह शुद्ध ज्ञायकस्वरूप रागद्वेषरहित ज्ञानज्योतिपुञ्ज उसकी ओर तीव्र अनुराग न चल रहा हो तो वह क्या वैराग्य ? अपने जीवनमें करने योग्य काम केवल एक ही है। उपयोग ज्ञानस्वभावकी ओर बढ़ता, इसके सिवाय और कुछ कर्तव्य नहीं है जो कि हमारा कल्याण कर सके। अब उस कामको जब हम नही कर पा रहे हैं, लक्ष्य है फिर भी नहीं

http://www.jainkosh.org

कर सकते हैं तो ऐसी स्थितिमें जो हमारेमें ज्ञानस्वभावकी उपासनाके लिए तड़फन होती है, यत्न है, जो कुछ है बस उस ही के माफिक बन जाता है व्यवहारधर्म। कर्तव्य हमारा एक है—अन्तस्तत्त्वकी ओर झुकना। ऐसी भक्ति अगर न हो तो मोक्षका उपाय कैसे मिलेगा ?

(१०७) परसे अपरिचित रहकर स्वपरिचयके उत्कर्षमें कल्याण—

देखिये—कल्याणकी बात हमारी हममें है, ऐसे अपूर्व कल्याणके लिए दूसरोंसे हमें कुछ सहयोग नहीं मिलता। इन लौकिक जनोंमें कोई हमारा प्रभु है क्या ?····यदि नहीं तो फिर उसके परिचयकी आवश्यकता क्या ? जैसे कहते हैं कि जो व्याख्यान देना नहीं जानता, उसको सिखाते हैं—देखो तुम कमरेमें बैठ जावो और इन कुर्सी, मेज आदिकको ही समझ लो कि जो कुछ भी ये चीजें हैं उनको समझ लो कि ये लोग बैठे हैं और तुम वहां व्याख्यान देना सीखो। अथवा कभी इस तरह भी समझाते हैं कि देखो—डरो मत। यहां जितने लोग बैठे हैं उनको समझ लो कि ये सब मिट्टीके पुतले हैं, बस उनके बीच व्याख्यान देना सीखो तो उसमें बात यह आयी कि तुम परिचय मत मानो। लोगोंसे संकोचकी बात मत लावो। यही बात तो ज्ञानी पुरुष करते हैं। जितने लोग है, जितने पुरुष हैं उन सबको समझना है कि क्या है ? ये

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चलते-फिरते सिनेमाके जैसे चित्र हैं, इनमें क्या संकोच करना ? अपने प्रभुका संकोच करो। अपने प्रभुकी प्रसन्नतामें लगो। ये सब तो चलचित्र हैं। इनमें जो चेतना है वह कहां गुप्त है ? कितने अंतस्तत्त्वकी चीज है ? मेरा क्या स्वरूप है उसकी यहां जानकारी चल रही है।

तो अपने हितके लिए यह समझें कि मेरे लिए मैं कुछ हूं और मुझे अपन आपमें अपना हित करना है। अब तक तो घूमे, ३४३ घनराजू प्रमाण लोकमें सर्वत्र घूमे। अनेक बार जन्म लिया, अनेक परिचय भी हुए। जिसे कहते हैं एक निगरानी करना, कब्जा करना, देखभाल करना। तो लोक मे जितने उपभोग्य पदार्थ हैं सबकी देखभाल करने आये, पर उनसे अब तक मिला क्या ? रीतेके रीत ही तो रहे। तो बाहरका क्या परिचय बनाना, बाहरमें किसका संकोच करना, बाहरमें क्या प्रशंसा चाहना ? लोगोंको देखकर लोगों की बातें सुनकर अपने आपको क्या रीता बनाना ? अपनेको देखो, अपनेमें समावो, ज्ञानमें ज्ञानस्वरूपको मग्न करो, इसमें ही अपना हित है। ऐसा काम करनेके लिए हमें सम्बन्ध बनाना है तो एक मात्र प्रभुसे बनाना है और वह भी क्या बनाना है, अपने आपमें ही वह काम किया जाना है। तो प्रभुके गुणोंकी जो स्तुति करता है वह परमनिर्वृत्तिका साधन बना लेता है। इस स्तोत्रके प्रथम छन्दमें कहा है कि हे

जिनेन्द्रदेव ! तुम्हारी थोड़ी भी स्तुति करना सर्व कर्मोंके क्षयके लिए पर्याप्त है। ठीक ही है, सर्व कर्मोंके क्षय होनेका जो सिलसिला मिला है, जो बात मिली है वह सब प्रभुभक्तिके द्वारा मिली है। ऐसा कौनसा सिद्ध है कि जो प्रभुभक्ति बिना इस सिलसिलेमें आ पाया हो ? तब कह सकते हैं कि यह प्रभु-भक्ति समस्त गुणोंके क्षयके लिए कारणभूत है। तब उस मोक्षकी कांक्षासे अथवा भक्तिकी कांक्षासे अन्य बातोंसे विरक्त होना चाहिए। जिसने अपने आपमें अपने स्वरूपका दर्शन पाया है और उस स्वरूपदर्शनसे सत्य आनन्दका अनुभव किया है उसके यह परम उपेक्षा सहज हो जाती है। सबसे यह विरक्त होगा।

(१०८) स्तुतिप्रयासकी अवधि आत्मतत्त्वका लाभ—

देखिये—जितने भी प्रयत्न होते हैं उस प्रयत्नकी अवधि क्या याने कहां तक प्रयत्न हो, कब तक प्रयत्न हो ? उसकी अवस्था ही यह है कि जो रुचिकर पदार्थ है उसका लाभ हो जायगा। म्याद है यह प्रयत्नकी, इसी तरह उसके प्रयासकी अवधि यही तो है। हमें हितके मार्गमें चलना होगा। न चलेंगे तो बतलाओ क्या फायदा पायेंगे ? कुटुम्बका मोह किया, राग किया, धन वैभवका राग किया, यश इज्जत प्रशंसा का राग किया तो करते जावो, हजारों लाखों आदमियोंमें नाम बना लो, लोग नाम लेने लगें। अरे धर्मपद्धतिमें क्या करना ? धर्मका भेषरूप रखकर यदि लोकमें सर्वत्र नाम

Report any errors at vikasnd@gmail.com

फैलानेकी ही चाह है तो तुम क्या चीज हो ?

देखो——बड़े-बड़े राष्ट्रपतियोंकी और बड़े बड़े नेताओं की कितनी प्रसिद्धि है ? तो तुम किस चीजमें हो ? अरे धर्म के भेषमें, मुद्रा धारण करनेके यत्नमें यदि यही वाञ्छा रही तो उससे क्या लाभ मिला ? तो समस्त बाह्य प्रसंगोंसे विरक्त होना चाहिए, वही पुरुष वास्तविक मायनेमें प्रभुकी भक्तिमें आ सकता है। और प्रभुभक्तिका ही एक सहारा है। देखो—— विपत्ति भी क्या है हम आपमें ? रागद्वेष मोह विकल्प ये उमड़ते हैं, आते हैं, इनका आक्रमण है, बस यह ही तो विपत्ति है। बाहरमें क्या विपत्ति ? घर रहे, चाहे न रहे, किसीको कुछ भी हो जाय, किसी भी बाह्य पदार्थमें कुछ भी परिणमन हो तो वह हो। वे सब परपदार्थ हैं, उनका परिणमन उनमें है, उनसे मेरेमें क्या आपत्ति है ?

आपत्ति तो यह है कि जो राग बन रहे, द्वेष बन रहे, मोह हो रहा, बाह्यपदार्थोंका उपयोग कर रहे हैं और वहाँ राग मोह बन रहा है तो भीतर जो यह विभाव बन रहा, बस वह आपत्ति है। एक ही भावना हो दर्शन करते समय, प्रभुभक्तिके समय, अनेक समय कि मेरा ज्ञान ज्ञानस्वरूपमें मग्न हो। सारे संकल्प-विकल्प मिट जायें। संकट तो था ही नहीं। माननेके थे, वे मिटे कि संकट मिट गए। तो एक ही कर्तव्य है, एक ही अपना ध्येय हो कि मेरा ज्ञान

http://www.jainkosh.org

मेरे ज्ञानस्वरूपमें मग्न हो, ऐसे ज्ञानमें ज्ञानस्वरूप समाये तो निर्विकल्प स्थिति बने, सर्व ख्याल दूर हों। बस यह ही तो प्रभुताकी परमभक्ति है। इस भक्तिके प्रसादसे आत्माके संकट दूर होते हैं।

इति मम मतिवृत्या संहृतिं त्वद्गुणाना-
मनिशमभितशक्ति संस्तुवानस्य भक्त्या।
सुखमनघमनंतंस्वात्मसंस्थं महात्मन्,
जिन ! भवतु महत्या केवलश्रीविभूत्या ॥५०॥

(१०९) स्तवनमें स्तवनसे आशीर्लाभकी भावना——

आचार्यदेव अपने शब्दोंमें कह रहे हैं अपने लिए कि मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार आपके गुणोंका स्तवन किया है। तो मेरी यह स्तुति मेरेको रुचिकर है, निरन्तर आपके गुणोंका ही स्तवन स्तवन मेरेको बना रहे और इस तरह स्तवन करते हुए मेरेको वह निष्पाप अपने आत्मामें स्थित सुख प्राप्त हो। एक महती केवलज्ञान विभूतिके साथ। जहाँ केवलज्ञान है अर्थात् सिर्फ ज्ञान ही ज्ञान है उसकी महिमा है ऐसी कि सारे विश्वका जाननहार रहता है, इसलिए केवलज्ञानका यह अर्थ प्रसिद्ध हो गया कि जो तीनों लोकालोकको जाने उसे केवलज्ञान कहते हैं। तो केवलज्ञानके शब्दमें जो अर्थ है वह तो यह है कि केवल मात्र ज्ञानकी ज्ञान, उसके साथ कुछ भी न लगा हो तो ऐसा ज्ञान तब बने कि जिसके साथ रागद्वेषकी बात रंचमात्र भी न हो, तो चूंकि ज्ञानका स्वरूप है कि जान ले,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

किसे जान ले ? सत्को जान ले। बस जो सत् है वह ज्ञानमें आयगा। ज्ञानमें यह रुकावट तो नहीं है कि यह सामनेकी चीज जाने, पीठ पीछेकी न जाने। इस इन्द्रियापेक्ष ज्ञानमें ऐसा लगता है, लेकिन ज्ञानमें ज्ञानकी ओरसे रुकावट नहीं है। यह बन्धन दशाकी बात चल रही है, पर ज्ञानका स्वरूप क्या है ? जान जाय। कहाँ जाकर जान जाय ? जिस चीज को जानना है उसमें जाकर जान गया। अपने ही प्रदेशमें रहता हुआ सब कुछ जान ले। तो जब यह अपने आपमें रहता हुआ जानता है सत्को तो उसमें क्या अवधि कि इतनी दूर तकके पदार्थको जाने, आगेकी न जाने। ज्ञान निरवधि पद्धतिसे अपनी क्रिया करता है। तो जहाँ केवलज्ञान है वही कहलाया एक परमलक्ष्मी। वह है परमविभूति। जिसके साथ साथ निष्पाप निर्दोष स्वाधीन आनन्दकी प्राप्ति हो।

(११०) ज्ञानलक्ष्मीकी उपासनासे सर्व कामनाओंकी सिद्धि—

लक्ष्मी नाम किसका, जिसकी कि लोग उपासना करते हैं। लक्ष्मी कहो, लक्ष्म कहो, लक्षण कहो, ये सब पर्यायवाची शब्द हैं। लक्ष्मी शब्दको स्त्रीरूपमें बना दिया, लक्ष्मका सीधा रूप है और लक्षण भी उसीसे बना है जिसका अर्थ है लक्षण। अपना चिन्ह क्या है ? ज्ञान। तो ज्ञानको ही लक्ष्म, लक्ष्मी और लक्षण कहा। लक्ष्मीकी पूजासे ही सर्वसिद्धि होती है। तो जरा इस ज्ञानकी उपासना करके देख तो लो—यह ज्ञान-

स्वभाव ही लक्ष्मी है। इस लक्ष्मीकी उपासना यदि रुच जाय मायने ज्ञानस्वरूपमें ज्ञानकी अभेदवृत्ति बन जाय, परमभक्ति बन जाय तो वहाँ सब मनोकामना सिद्ध हो गयी।

मनोकामना सिद्ध होनेका तरीका क्या है ? यह तरीका है मिट जाना। मनोकामना मिट जानेका नाम है मनोकामनाकी सिद्धि। जैसे हमारी इच्छा पूर्ण हो गई, हमारी इच्छा सिद्ध हो गई तो उसका अर्थ क्या है कि इच्छा मिट गई। हर जगह यही बात लगा लो। यहाँ भी हम जितने सुख पाते हैं वह इच्छाके मिटनेसे पाते हैं। और उसीको कहते हैं कि हमारी इच्छा विलीन हो गई। इच्छाकी पूर्णताका अर्थ है इच्छाका विनाश। तभी तो देख लो ना—समाप्तिका अर्थ क्या बताया ? खतम हो गया, नष्ट हो गया। लेकिन जरा शब्दमें देखो—नष्ट होना कहाँ लिखा है ? सम उपसर्ग है और आप्त शब्द है। आप्तका अर्थ है—भली प्रकार पूरा हो गया। भली प्रकार पूरा होनेका नाम है समाप्त।

जैसे अध्याय समाप्त हो गया मायने अध्याय भली प्रकार पूरा हो गया। उसीका अर्थ है खतम हो गया। तो इन शब्दोंके अर्थमें और उसके फलित अर्थकी प्रसिद्धिमें बड़ा रहस्य बना हुआ है। इच्छा हमारी पूर्ण हो गई इसके मायने है कि इच्छा हमारी समाप्त हो गई। तो मनोकामनाकी सिद्धि तब कहलाती है जब मनोकामना नहीं रहती। तो जहाँ ज्ञान-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

भक्ति है, ज्ञानस्वरूपमें ज्ञानका अवगाहन हो गया है वहाँ कोई मनोकामना नहीं है, इसलिए कहा जायगा कि सारी मनोकामनायें सिद्ध हो गईं। इसीको कहते हैं सर्वार्थसिद्धि। कृतकृत्यतामें सर्व अर्थोंकी सिद्धि हो जाती है। अर्थकी सिद्धिका जो तरीका है वह तरीका यहाँ देख लीजिए। तो प्रभुका स्तवन करते हुए मेरेको केवलज्ञानरूपी महती विभूतिके साथ हे महात्मन्! जिनेन्द्र! मेरेको निष्कम्प, अविनाशी, स्वाधीन सुख की प्राप्ति हो।

(१११) अन्तर्जल्पसे असंबद्ध, नीराग, निर्दोष ज्ञानविभूतिके अभ्युदयके साथ अनघ स्वाधीन आनन्दके लाभकी भावना—

देखिये शब्दोंकी रचना हुआ करती है लोगोंको समझानेके लिए। खुदके समझनेके लिए शब्दोंकी क्या जरूरत है? सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च चैतन्यस्वभावका अनुभवन करते हैं। तो उनको किसीने कहाँसे शब्द सिखा दिया? जीवादिक ७ तत्त्व ९ पदार्थ और ये देव, शास्त्र, गुरु ये सारे शब्द उसे किसने सिखाया? तो खुदको समझनेके लिए शब्दोंकी क्या आवश्यकता? हम लोगोंको शब्दोंके समझनेके लिए क्यों आवश्यकता पड़ रही? उसका कारण यह है कि हम शब्द रचनाके प्रसंगमें अब तक रहे आये तो हमारी भी प्रकृति उसी शब्द-पद्धतिसे ज्ञानकी चलती है और इसी कारण एक शब्दा-

http://www.jainkosh.org

द्वैतवादी सिद्धान्तने यह कहा है कि जगत कुछ नहीं है, केवल एक शब्दरूप है। शब्दके सिवाय कोई जगत है ही नहीं। अस्तित्व ही नहीं किसीका। जैसे ब्रह्माद्वैतवादी ब्रह्मको ही एक मानते हैं और सबको मिथ्या मानते हैं, ऐसे ही शब्दाद्वैतवादी शब्दको ही एक तत्त्व मानते हैं बाकी सब मिथ्या मानते हैं। तो जब प्रकट देखनेमें यों लग रहा कि कैसे और चीजें मिथ्या हैं? बैन्च रखो, दुःखी बैठे, ज्ञान बन रहा, अनेक पदार्थ हैं और यहां कह रहे कि केवल शब्दमात्र है तो जिसका प्रतिपादन है यह कि देखो जितना तुम्हें जो कुछ दिख रहा यह क्या है? यह तो सब ज्ञानमें आ रहा।

जब हम जान रहे तो ज्ञान ही तो है वास्तविक बात, ये चीजें वास्तविक नहीं। ज्ञानमें आया तब ये विकल्प करते हो। तो तत्त्व क्या जाना गया? यह ज्ञानमात्र, मगर इस ज्ञानको भी तो देखो कि जितना भी ज्ञान है वह सब शब्दसे बिंधा हुआ है। और लगता है अपनेको ऐसा कि हम जो कुछ भी ज्ञान भीतर करते हैं उसके साथ शब्द उठते हैं। इसे कहते हैं अन्तर्जल्प। तो सारा ज्ञान शब्दसे बिंधा है। शब्दसे बिंधे बिना ज्ञान होता ही नहीं है। तो इसके मायने यह हैं कि ज्ञानका मूल है शब्द। तो सारा जगत शब्दमय कहलाता है। पहिले इन बाहरी पदार्थोंका निषेध हुआ ज्ञान अद्वैत बताकर और ज्ञानका निषेध हुआ ज्ञानका मूल शब्द बताकर। तो उसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

माना कि हां शब्दसे विधा ज्ञान है, और जगतमें शब्द ही शब्द है सब कुछ। लेकिन यह तो मनुष्योंकी मान्यता है जो बोलचाल करते हैं, वाणी बोलते हैं, पर ज्ञानस्वरूपको देखें तो उस ज्ञानको समझनेके लिए, जाननेके लिए शब्दकी क्या जरूरत है? और देखो—इस तरहसे ज्ञानके शुद्ध रूपको भी समझ सकते हैं। जहां शब्दकी लपेट न हो वह है वास्तवमें शुद्ध ज्ञान। ऐसा ज्ञान जो इतना भी रागद्वेषसे रहित है कि जिसमें अन्तर्जल्प भी नहीं उठ रहे हैं, रागकी कणिका मात्र नहीं है, ऐसी ज्ञान-विभूतिके उदयके साथ मेरे यह निष्पाप स्वाधीन आनन्दका लाभ हो। स्तवनके फलमें केवल यही चाहा जा रहा है।

कहते हैं ना कि जो जिसका आसक्त हो जाता है उसकी ही धुन रहा करती है। ज्ञानी पुरुष वह है जिसको अपने ज्ञानस्वभाव अविकार ज्ञानमात्र अंतस्तत्त्वपर आसक्ति हो तथा उसकी धुन बनी हो। मेरेको तो यह चाहिए। दुनियामें जो हो सो हो। जो कोई जो कुछ बके, कहे, रहे, जैसा जो कुछ होता हो, हो। वे तो सब बाहरी बाहरी ही बातें हैं। मेरेमें उनका क्या प्रभाव? मेरा ज्ञान मेरे अविकार ज्ञानस्वरूपमें मग्न हो, इस प्रकार स्तवन करके आचार्यदेव अपनी इच्छा प्रकट करते हैं।

॥ समाप्त ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सहजानन्द-साहित्य-उद्घोष

वस्तु सामान्यविशेषात्मक है, द्रव्यपर्यायात्मक है। अतः स्याद्वाद द्वारा समस्त विवाद विरोध समाप्त कर वस्तुका पूर्ण परिचय कीजिए और आत्मकल्याणके अनुरूप नयोंको गौण मुख्य करके अभेदपद्धतिके मार्गसे आत्मलाभ लीजिए।

—एतदर्थं—

सहजानन्द-साहित्यका अध्ययन व मनन कीजिए।

सहजानन्द-साहित्यमें कुल ५४५ ग्रन्थ हैं, जिनमें करीब ३०० ग्रंथ करीब २०५ पुस्तकोंमें प्रकाशित हो गये हैं। शेष ग्रंथ भी यथासमय प्रकाशित होंगे। पूरा सेट मंगाने वालोंको अपना व स्टेशनका नाम स्पष्ट शब्दोंमें लिखना चाहिये। यह सेट रेलवे पार्सलसे ही जा सकता है, क्योंकि एक-एक पुस्तक रखनेपर करीब ४० किलो वजन हो जाता है। शास्त्र वाली संस्थाका आजीवन सदस्य बननेपर वर्तमान सब ग्रन्थ मिलेंगे तथा भविष्यमें जो प्रकाशित होंगे वे भी भेंटमें मिलेंगे।

मासिक वर्णी-प्रवचनमें श्री सहजानन्द जी महाराजके प्रवचन प्रकाशित होते रहते हैं। वर्णीप्रवचनप्रकाशिनी संस्था का आजीवन सदस्य होनेपर मासिक 'वर्णीप्रवचन' आजीवन भेंटरूपमें मिलता रहेगा।